सर्वसामान्य
प्रतिक्रमण - आवश्यक

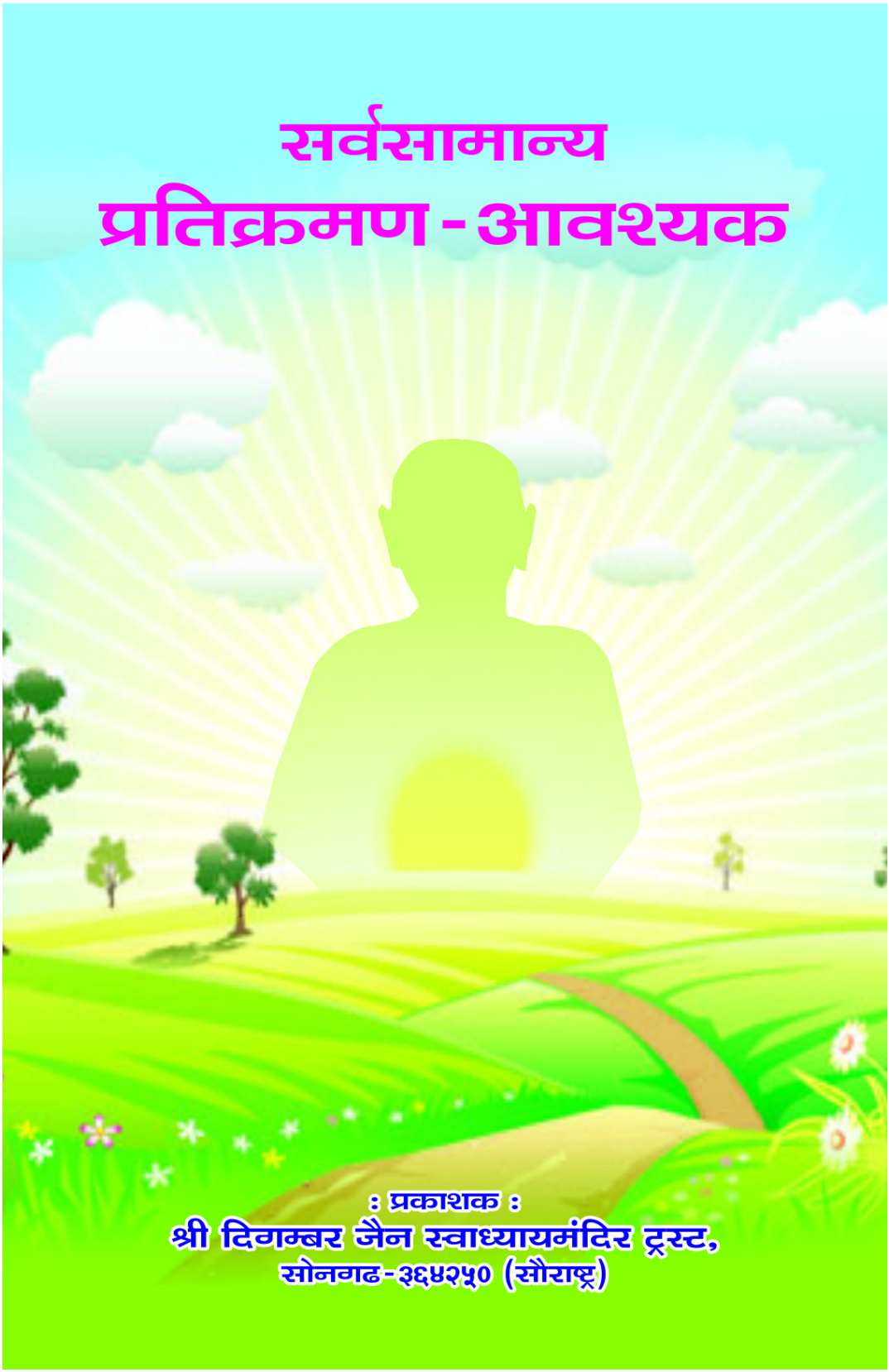

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ - ३६४२५० (सौराष्ट्र)

भगवान श्री कुंदकुंद-कहान जैन शास्त्रमाला, पुष्प–254

ॐ

सर्वज्ञाय नमः।

सर्वसामान्य

प्रतिक्रमण-आवश्यक

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ–३६४२५० (सौराष्ट्र)

[२]

प्रथम संस्करण : ८०० वि. सं. २०७३ ई. स. २०१७

सर्व-सामान्य प्रतिक्रमण आवश्यक (हिन्दी)के

❀ स्थायी प्रकाशन-पुरस्कर्ता ❀

सीडनी मुमुक्षु मंडल,
सीडनी (ओस्ट्रेलिया)

Hdn Shrdhanand.

मूल्य : रू. 10=00

मुद्रक :
स्मृति ऑफसेट
प्लोट नं. १३, कहानवाडी, अंकुर स्कूल रोड
सोनगढ-३६४२५०

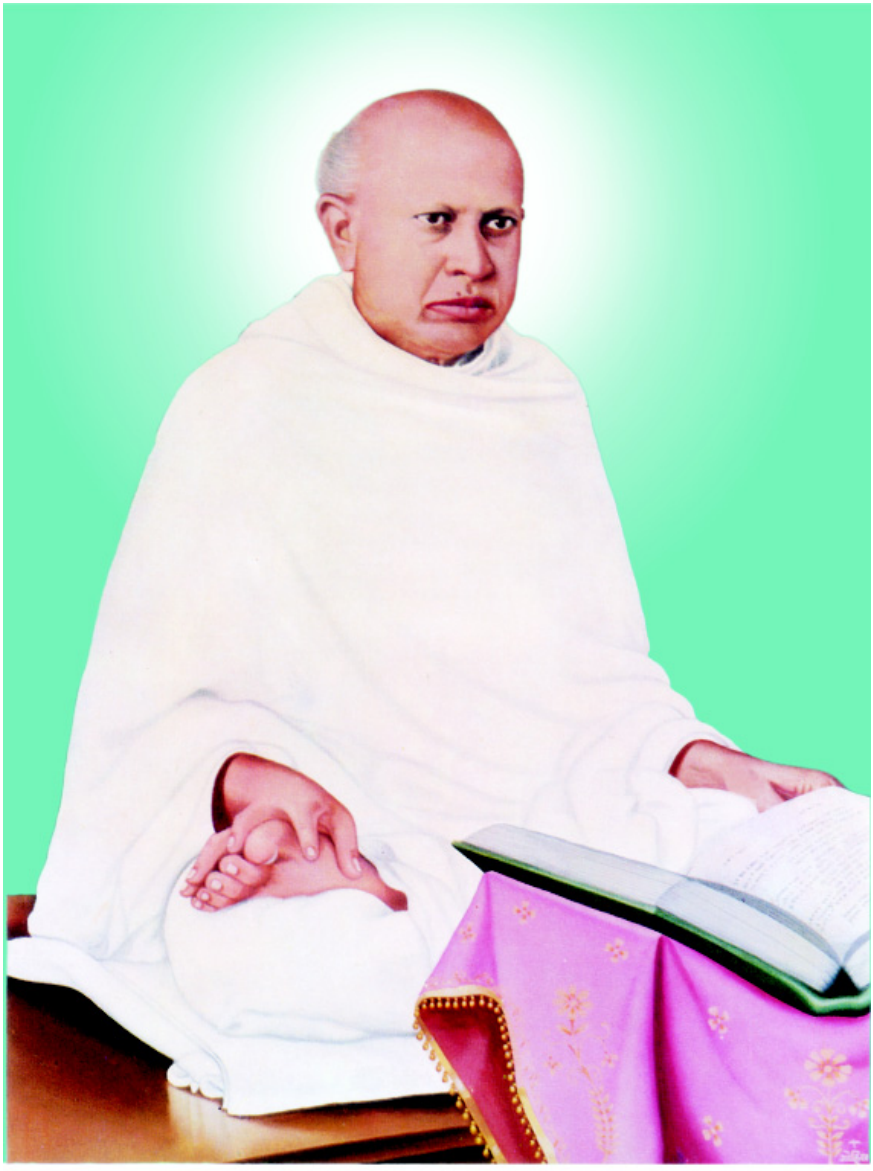

પરમ પૂજ્ય અધ્યાત્મમૂર્તિ સદ્‌ગુરુદેવ શ્રી કાનજીસ્વામી

अनुक्रमणिका

प्रथम प्रतिक्रमण

विषय	पृष्ठ
निश्चय और व्यवहार प्रतिक्रमणकी व्याख्या	1
प्रतिक्रमण के छ विभाग	1
नमस्कार मंत्र	2
वंदना	2
सामायिकका स्वरूप	3
तीर्थंकर भगवानकी स्तुतिका स्वरूप	6
छः पदका पाठ (कायोत्सर्ग)	7
श्री सद्गुरु–वंदन	11
समकितका सच्चा स्वरूप	12
सम्यग्ज्ञानमें लगे हुवे दोषोंका प्रतिक्रमण	37
बारह प्रकारके व्रतोंका स्वरूप	37
संल्लेखना	41
मिथ्यात्वका स्वरूप	41
चार मंगल	43
क्षमापना	43
लोगस्ससूत्रका कायोत्सर्ग	46
प्रत्याख्यान	48
नमोत्थुणं	48
स्वाध्यायकी महिमा	50

द्वितिय प्रतिक्रमण

विषय	पृष्ठ
देवगुरुधर्म मंगल	51
दिव्यध्वनि नमस्कार	51
ब्रह्मचर्य–महिमा	51
सर्वज्ञका स्वरूप	52
समयसारजी स्तुति	52
आत्मसिद्धि शास्त्रके पद	53
सामायिक पाठ	56
श्रावकका कर्तव्य	58
मिच्छामि दुक्कडं	58
परमपद प्राप्तिकी भावना	59
प्रत्याख्यान	61
जिनजीकी वाणी	61
अंतिम मंगल	62
उपादान–निमित्तके दोहे	63
उपादान–निमित्तका संवाद	65
सद्गुरु–उपकारदर्शन	77
प्रणिपात–स्तुति	77
गुरुदेवश्री प्रति क्षमापना स्तुति	78
तात्त्विक सुवाक्य	79

सूचना

1. जो मुमुक्षु प्रतिक्रमण करते समय मूल गाथाएँ एवं कवित्त समझ सकते हो उनको वह बोलकर उनका भाव बराबर समझना। उनको अर्थ पढ़नेकी जरूरत नहीं।

2. जो मूल गाथा एवं कवित्त पढ़कर समझ न सकते हो उनको अर्थ बोलकर प्रतिक्रमणके भाव यथार्थ समझना चाहिये। उनके लिये उसका मूल पाठ एवं कवित्त पढ़नेकी जरूरत नहीं।

3. जिनके पास समय कम हो वे लघुप्रतिक्रमण बोलकर उनका अर्थ बराबर समझे। जिनको संवत्सरीके दिन एवं धार्मिक त्योहारके दिन दो प्रतिक्रमण करने हो वे दो प्रतिक्रमण करें।

4. कोई आत्मार्थी स्वलक्षसे यह आवश्यक क्रियाको प्रतिदिन आत्मशुद्धिके लिये करेगा वह जरूर आत्मशांति पायेगा।

ॐ

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

सर्व सामान्य प्रतिक्रमण-आवश्यक

प्रतिक्रमणके दो प्रकार है : (1) निश्चय और (2) व्यवहार।

निश्चयप्रतिक्रमणकी व्याख्या[1] :—

पूर्वमें किये हुए जो अनेक प्रकारके विस्तारवाले शुभाशुभ कर्म उससे जो आत्मा, अपनेको दूर रखता (निवर्तता) है वो आत्मा प्रतिक्रमण है।

व्यवहार-प्रतिक्रमणकी व्याख्या[2] :—

अपने शुभाशुभ कर्मका आत्म निंदापूर्वक त्याग करनेका भाव– आत्माके ऐसे विशुद्ध परिणाम कि जिसमें अशुभ परिणामोकी निवृत्ति हो।

प्रतिक्रमणके निम्न प्रकारसे छ विभाग है :—

(1) सामायिक,
(2) तीर्थंकर भगवानकी स्तुति,
(3) वंदन,
(4) प्रतिक्रमण,
(5) कायोत्सर्ग,
(6) प्रत्याख्यान।

[श्री सीमंधरप्रभुकी आज्ञा लेकर प्रतिक्रमण शुरु करता हूँ।]

---

१. समयसार गाथा २८३

२. श्रावक प्रतिक्रमण (पंडित नंदलालकृत प्रस्तावनामेंसे)

पाठ : १

मंगलाचरण : नमस्कार-मंत्र

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं॥

अर्थ :—श्री अरिहंतोंको नमस्कार हो, सिद्धोंको नमस्कार हो, आचार्योंको नमस्कार हो, उपाध्यायोंको नमस्कार हो और लोकमें स्थित सर्व साधुओंको नमस्कार हो।[1]

अरिहंत सिद्ध आचार्य ने, उपाध्याय मुनिराज,
पंच पद व्यवहारथी, निश्चये आत्मामां ज. १०४[2]

❀

पाठ : २

वंदना (तिक्खुत्तो)

तिक्खुत्तो, आयाहिणं, पयाहिणं, वंदामि, णमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेईयं, पज्जुवासामि.

अर्थ :—पंच परमष्ठिको दो हाथ जोडकर आवर्तनसे तीन बार प्रदक्षिणा देकर मैं स्तुति करता हूँ। नमस्कार करता हूँ, विनयसे सत्कार करता हूँ, विवेकपूर्वक सन्मान करता हूँ। हे पूज्य! आप कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप, ज्ञानरूप हो, इसलिये मैं आपकी पर्युपासना-सेवा करता हूँ।

---

१. यह पंच परमेष्ठीका स्वरूप मोक्षमार्ग प्रकाशक (गुजराती) पेईज २ से ६ तक है। जिज्ञासु वहाँसे देख ले।

२. योगीन्द्र देवकृत योगसारमेंसे।

पाठ : ३*

आत्मा के कैसे भावको श्री भगवान सामायिक कहते है, वह अब कहनेमें आता है :—

जे समतामां लीन थई, करे अधिक अभ्यास;
अखिल कर्म ते क्षय करी, पामे शिवपुर वास. ६३.
सर्व जीव छे ज्ञानमय, जाणे समता धार;
ते सामायिक जिन कहे, प्रगट करे भवपार. ६६.
राग–द्वेष बे त्यागीने, धारे समता भाव;
सामायिक चारित्र ते, कहे जिनवर मुनिराव. १००.

(हरिगीत)

विरदो सव्वसावज्जे तिगुत्तो पिहिदिंदिओ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥१२५॥
सावद्यविरत, त्रिगुप्तमय अरु पिहितइन्द्रिय जो रहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवलीशासन कहे ॥१२५॥

अर्थ :—जो सर्व सावद्यमें विरत है, जो तीन गुप्तिवाला है और जिसने इन्द्रियोंको बन्द (निरुद्ध) किया है, उसे सामायिक स्थायी है। ऐसा केवलीके शासनमें कहा है।

जो समो सव्वभूदेसु थावरेसु तसेसु वा।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥१२६॥
स्थावर तथा त्रस सर्व जीवसमूह प्रति समता लहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे ॥१२६॥

अर्थ :—जो स्थावर अथवा त्रस सर्व जीवोंके प्रति समभाववाला है, उसे सामायिक स्थायी है ऐसा केवलीके शासनमें कहा है।

---

* योगीन्द्र देवकृत योगसारमेंसे ।

१. यह नं. १२५ से १३३ तककी गाथा श्री नियमसारकी है।

जस्स सण्णिहिदो अप्पा संजमे णियमे तवे।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥१२७॥

संयम–नियम–तपमें अहो! आत्मा समीप जिसे रहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे ॥१२७॥

अर्थ :—जिसे संयममें, नियममें और तपमें आत्मा समीप है, उसे सामायिक स्थायी है ऐसा केवलीके शासनमें कहा है।

जस्स रागो दु दोसो दु विगडिं ण जणेइ दु।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥१२८॥

नहिं राग अथवा द्वेषसे जो संयमी विकृति लहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवलीशासन कहे ॥१२८॥

अर्थ :—जिसे राग या द्वेष (उत्पन्न न होता हुआ) विकृति उत्पन्न नहीं करता, उसे सामायिक स्थायी है ऐसा केवलीके शासनमें कहा है।

जो दु अट्टं च रुद्दं च झाणं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥१२९॥

रे! आर्त्त-रौद्र दुध्यानका नित ही जिसे वर्जन रहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवलीशासन कहे ॥१२९॥

अर्थ :—जो आर्त और रौद्र ध्यानको नित्य वर्जता है, उसे सामायिक स्थायी है ऐसा केवलीके शासनमें कहा है।

जो दु पुण्णं च पावं च भावं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥१३०॥

जो पुण्य-पाप विभावभावोंका सदा वर्जन करे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवलीशासन कहे ॥१३०॥

अर्थ :—जो पुण्य तथा पापरूप भावको नित्य वर्जता है, उसे सामायिक स्थायी है ऐसा केवलीके शासनमें कहा है।

जो दु हस्सं रई सोगं अरइं वज्जेदि णिच्चसो ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥ १३१ ॥

जो दुगंछा भयं वेदं सव्वं वज्जेदि णिच्चसो ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥ १३२ ॥

जो नित्य वर्जे हास्य, अरु रति, अरति, शोकविरत रहे ।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवलीशासन कहे ॥१३१॥

जो नित्य वर्जे भय जुगुप्सा, सर्व वेद समूह रे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवलीशासन कहे ॥१३२॥

अर्थ :—जो हास्य, रति, शोक और अरतिको नित्य वर्जता है, उसे सामायिक स्थायी है ऐसा केवलीके शासनमें कहा है।

जो जुगुप्सा भय और सर्व वेदको नित्य वर्जता है, उसे सामायिक स्थायी है ऐसा केवलीके शासनमें कहा है।

जो दु धम्मं च सुक्कं च झाणं झाएदि णिच्चसो ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥ १३३ ॥

जो नित्य उत्तम धर्म–शुक्ल सुध्यानमें ही रत रहे ।
स्थायी समायिक है उसे यों केवलीशासन कहे ॥१३३॥

अर्थ :—जो धर्मध्यान और शुक्लध्यानको नित्य ध्याता है, उसे सामायिक स्थायी है ऐसा केवलीके शासनमें कहा है।

*

पाठ : ४

अब तीर्थंकर भगवानकी सच्ची स्तुतिका स्वरूप कहते हैं :

जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं ।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू ।। ३१ ।।

कर इन्द्रियजय ज्ञानस्वभाव रु अधिक जाने आत्मको,
निश्चयविषैं स्थित साधुजन भाषैं जितेन्द्रिय उन्हींको ।।३१।।

अर्थ :—जो इन्द्रियोंको जीतकर ज्ञानस्वभावके द्वारा अन्यद्रव्यसे अधिक आत्माको जानता है उसे, जो निश्चयनयमें स्थित साधु हैं वे, वास्तवमें जितेन्द्रिय कहते हैं।

जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं ।
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया बेंति ।। ३२ ।।

कर मोहजय ज्ञानस्वभाव रु अधिक जाने आतमा,
परमार्थ-विज्ञायक पुरुषने उन हि जितमोही कहा ।।३२।।

अर्थ :—जो मुनि मोहको जीतकर अपने आत्माको ज्ञानस्वभावके द्वारा अन्यद्रव्यभावोंसे अधिक जानता है उस मुनिको परमार्थके जाननेवाले जितमोह कहते हैं।

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हवेज्ज साहुस्स ।
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं ।। ३३ ।।

जितमोह साधु पुरुषका जब मोह क्षय हो जाय है,
परमार्थविज्ञायक पुरुष क्षीणमोह तब उनको कहे ।।३३।।

अर्थ :—जिसने मोहको जीत लिया है ऐसे साधुके जब मोह क्षीण होकर सत्तामेंसे नष्ट हो तब निश्चयके जाननेवाले निश्चयसे उस साधुको 'क्षीणमोह' नामसे कहते हैं।

---

१. पाठ ४ और ७में जो गाथाएँ हैं, वह श्री समयसाजीकी है ।

पाठ : ५*

आत्माका स्वरूप जाननेके लिए आत्माके छह पदका पाठ कायोत्सर्ग(काउसग्ग) कहनेमें आता है :—

(नमस्कार मंत्र बोलना)

अनन्य शरणके दातार ऐसे श्री सद्गुरुदेवको
अत्यंत भक्तिसे नमस्कार।

जो शुद्ध आत्मस्वरूपको प्राप्त हुए हैं, ऐसे ज्ञानीपुरुषोंने नीचे कहे हुए छः पदोंका सम्यग्दर्शनके निवासके सर्वोत्कृष्ट स्थानक कहे हैं—

प्रथम पद—'आत्मा है।' जैसे घटपदादि पदार्थ है, वैसे आत्मा भी है। अमुक गुण होनेके कारण जैसे घटपटादिके होनेका प्रमाण है, वैसे स्वपरप्रकाशक चैतन्यसत्ताका प्रत्यक्ष गुण जिसमें है, ऐसा आत्माके होनेका प्रमाण है।

दूसरा पद—'आत्मा नित्य है।' घटपटादि पदार्थ अमुक कालवर्ती है। आत्मा त्रिकालवर्ती है। घटपटादि संयोगजन्य पदार्थ हैं। आत्मा स्वाभाविक पदार्थ है, क्योंकि उसकी उत्पत्तिके लिये कोई भी संयोग अनुभव योग्य नहीं होते। किसी भी संयोगी द्रव्यसे चेतनसत्ता प्रगट होने योग्य नहीं है, इसलिये अनुत्पन्न है। असंयोगी होनेसे अविनाशी है, क्योंकि जिसकी उत्पत्ति किसी संयोगसे नहीं होती, उसका किसीमें लय भी नहीं होता।

तीसरा पद—'आत्मा कर्ता है।' सर्व पदार्थ अर्थक्रियासम्पन्न हैं। किसी न किसी परिणाम-क्रिया-सहित ही सर्व पदार्थ देखनेमें आते हैं। आत्मा भी क्रियासंपन्न है। क्रियासंपन्न है, इसलिये कर्ता है। श्री जिनने उस कर्तृत्वका त्रिविध विवेचन किया है—परमार्थसे

* श्रीमद् राजचंद्रमेंसे ।

स्वभावपरिणति द्वारा आत्मा निज स्वरूपका कर्ता है। अनुपचरित (अनुभवमें आने योग्य, विशेष संबंध सहित) व्यवहारसे यह आत्मा द्रव्यकर्मका कर्ता है। उपचारसे घर, नगर आदिका कर्ता है।

चौथा पद—'आत्मा भोक्ता है।' जो जो कुछ क्रियाएँ हैं वे सब सफल हैं, निरर्थक नहीं। जो कुछ भी किया जाता है उसका फल भोगनेमें आता है, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है। जैसे विष खानेसे विषका फल, मिसरी खानेसे मिसरीका फल, अग्निस्पर्शसे अग्निस्पर्शका फल, हिमका स्पर्श करनेसे हिमस्पर्शका फल हुए बिना नहीं रहता, वैसे कषायादि अथवा अकषायादि जिस किसी भी परिणामसे आत्मा प्रवृत्ति करता है उसका फल भी होने योग्य ही है, और वह होता है। उस क्रियाका कर्ता होनेसे आत्मा भोक्ता है।

पाँचवाँ पद—'मोक्षपद है।' जिस अनुपचरित व्यवहारसे जीवके कर्मके कर्तृत्वका निरूपण किया, कर्तृत्व होनेसे भोक्तृत्वका निरूपण किया, उस कर्मकी निवृत्ति भी है; क्योंकि प्रत्यक्ष कषायादिकी तीव्रता हो, परंतु उसके अनभ्याससे, उसके अपरिचयसे, उसका उपशम करनेसे उसकी मंदता दिखायी देती है, वह क्षीण होने योग्य दीखता है, क्षीण हो सकता है। वह बंधभाव क्षीण हो सकने योग्य होनेसे, उससे रहित जो शुद्ध आत्मस्वभाव है, वही मोक्षपद है।

छठा पद—'मोक्षका उपाय है।' यदि कभी ऐसा ही हो कि कर्मबंध मात्र हुआ करे तो उसकी निवृत्ति किसी कालमें संभव नहीं है, परंतु कर्मबंधसे विपरीत स्वभाववाले ज्ञान, दर्शन, समाधि, वैराग्य, भक्ति आदि साधन प्रत्यक्ष हैं, जिन साधनोंके बलसे कर्मबंध शिथिल होता है, उपशांत होता है, क्षीण होता है। इसलिये वे ज्ञान, दर्शन, संयम आदि मोक्षपदके उपाय है।

श्री ज्ञानी पुरुषोंद्वारा सम्यक्दर्शनके मुख्य निवासभूत कहे हुए इन छः पदोंको यहाँ संक्षेपमें बताया है। समीपमुक्तिगामी जीवको सहज

विचारमें ये सप्रमाण होने योग्य हैं, परम निश्चयरूप प्रतीत होने योग्य हैं, उसका सर्व विभागसे विस्तार होकर उसके आत्मामें विवेक होने योग्य है। ये छः पद अत्यंत सन्देहरहित हैं, ऐसा परमपुरुषने निरूपण किया है। इन छः पदोंका विवेक जीवको स्वस्वरूप समझनेके लिये कहा है। अनादि स्वप्नदशाके कारण उत्पन्न हुए जीवके अहंभाव, ममत्वभावके निवृत्त होनेके लिये ज्ञानी पुरुषोंने इन छः पदोंकी देशना प्रकाशित की है। उस स्वप्नदशासे रहित मात्र अपना स्वरूप है, ऐसा यदि जीव परिणाम करे, तो वह सहजमात्रमें जागृत होकर सम्यग्दर्शनको प्राप्त होता है; सम्यग्दर्शनको प्राप्त होकर स्वस्वभावरूप मोक्षको प्राप्त होता है। किसी विनाशी, अशुद्ध और अन्य ऐसे भावमें उसे हर्ष, शोक, संयोग उत्पन्न नहीं होता। इस विचारसे स्वस्वरूपमें ही शुद्धता, संपूर्णता, अविनाशता, अत्यंत आनंदता, अंतर रहित उसके अनुभवमें आते हैं। सर्व विभावपर्यायमें मात्र स्वयंको अध्याससे एकता हुई है, उससे केवल अपनी भिन्नता ही है, ऐसा स्पष्ट–प्रत्यक्ष–अत्यंत प्रत्यक्ष–अपरोक्ष उसे अनुभव होता है। विनाशी अथवा अन्य पदार्थके संयोगमें उसे इष्ट-अनिष्टता प्राप्त नहीं होती। जन्म, जरा, मरण, रोगादि बाधा रहित संपूर्ण माहात्म्यका स्थान, ऐसा निजस्वरूप जानकर, वेदन कर वह कृतार्थ होता है। जिन-जिन पुरुषोंको इन छः पदोंमें सप्रमाण ऐसे परम पुरुषोंके वचनसे आत्माका निश्चय हुआ है, वे सब पुरुष स्वस्वरूपको प्राप्त हुए है, आधि, व्याधि, उपाधि और सर्व संगसे रहित हुए हैं, होते हैं; और भविष्यकालमें भी वैसे ही होंगे।

जिन सत्पुरुषोंने जन्म, जरा और मरणका नाश करनेवाला, स्वस्वरूपमें सहज अवस्थान होनेका उपदेश दिया हैं, उन सत्पुरुषोंको अत्यंत भक्तिसे नमस्कार है। उनकी निष्कारण करुणाकी नित्य प्रति निरंतर स्तुति करनेसे भी आत्मस्वभाव प्रगट होता है। ऐसे सर्व सत्पुरुषोंके चरणारविंद सदा ही हृदयमें स्थापित रहे।

जिसके वचन अंगीकार करने पर छः पदोंसे सिद्ध ऐसा

आत्मस्वरूप सहजमें प्रगट होता है, जिस आत्मस्वरूपके प्रगट होनेसे सर्व काल जीव संपूर्ण आनंदको प्राप्त होकर निर्भय हो जाता है, उन वचनोंके कहनेवाले सत्पुरुषके गुणोंकी व्याख्या करनेकी शक्ति नहीं है; क्योंकि जिसका प्रत्युपकार नहीं हो सकता, ऐसा परमात्मभाव मानों कुछ भी इच्छा किये बिना मात्र निष्कारण करुणाशीलतासे दिया, ऐसा होनेपर भी जिसने दूसरे जीवको यह मेरा शिष्य है, अथवा मेरी भक्ति करनेवाला है, इसलिये मेरा है, इस प्रकार कभी नहीं देखा, ऐसे सत्पुरुषको अत्यंत भक्तिसे बारंबार नमस्कार हो।

सत्पुरुषोंने सद्गुरुकी जिस भक्तिका निरूपण किया है, वह भक्ति मात्र शिष्यके कल्याणके लिये कही है। जिस भक्तिको प्राप्त होनेसे सद्गुरुके आत्माकी चेष्टामें वृत्ति रहे, अपूर्व गुण दृष्टिगोचर होकर अन्य स्वच्छंद मिटे, और सहजमें आत्मबोध हो, ऐसा जानकर जिस भक्तिका निरूपण किया है, उस भक्तिको और उन सत्पुरुषोंको पुनः पुनः त्रिकाल नमस्कार हो।

यद्यपि वर्तमानकालमें प्रगटरूपसे केवलज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हुई, परंतु जिसके वचनके विचारयोगसे शक्तिरूपसे केवलज्ञान है, यह स्पष्ट जाना है, श्रद्धारूपसे केवलज्ञान हुआ है, विचारदशासे केवलज्ञान हुआ है, इच्छादशासे केवलज्ञान हुआ है, मुख्यनयके हेतुसे केवलज्ञान रहता है, जिसके योगसे जीव सर्व अव्याबाध सुखके प्रगट करनेवाले उस केवलज्ञानको सहजमात्रमें प्राप्त करने योग्य हुआ, उस सत्पुरुषके उपकारको सर्वोत्कृष्ट भक्तिसे नमस्कार हो! नमस्कार हो!!

पाठ : ६

श्री सद्गुरु-वंदन

अहो! अहो! श्री सद्गुरु, करुणासिंधु अपार;
आ पामर पर प्रभु कर्यो, अहो! अहो! उपकार. १.

शुं प्रभुचरण कने, धरुं, आत्माथी सौ हीन;
ते तो प्रभुअे आपियो, वर्तुं चरणाधीन. २.

आ देहादि आजथी, वर्तो प्रभु आधीन;
दास, दास, हुं दास छुं, तेह प्रभुनो दीन. ३.

षट् स्थानक समजावीने, भिन्न बताव्यो आप;
म्यान थकी तरवारवत्, अे उपकार अमाप. ४.

जे स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दुःख अनंत;
समजाव्युं ते पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवंत. ५.

परमपुरुष प्रभु सद्गुरु, परम ज्ञान सुखधाम;
जेणे आप्युं भान निज, तेने सदा प्रणाम. ६.

देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत;
ते ज्ञानीना चरणमां, हो वंदन अगणित. ७.

*

पाठ : ७

१. जीव-अजीवका स्वरूप

(1) समकितका सच्चा स्वरूप भगवानने कैसा कहा है वह अब कहेंगे। वह समजकर सच्ची श्रद्धा करना। प्रथम मुख्य दो तत्त्व जो जीव और अजीव उनका स्वरूप।

जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण।
पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं ॥ २ ॥

जीव चरितदर्शनज्ञानस्थित, स्वसमय निश्चय जानना;
स्थित कर्मपुद्गलके प्रदेशों, परसमय जीव जानना॥२॥

अर्थ :—हे भव्य! जो जीव दर्शन–ज्ञान–चारित्रमें स्थित हो रहा है, उसे निश्चयसे (वास्तवमें) स्वसमय जानो; और जो जीव पुद्गलकर्मके प्रदेशोंमें स्थित है, उसे परसमय जानो।

ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो ॥ ११ ॥

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है।
भूतार्थ आश्रित आत्मा, सद्दृष्टि निश्चय होय है॥११॥

अर्थ :—व्यवहारनय अभूतार्थ है और शुद्धनय भूतार्थ है, ऐसा ऋषीश्वरोंने बताया है; जो जीव भूतार्थका आश्रय लेता है, वह जीव निश्चयसे (वास्तवमें) सम्यग्दृष्टि है।

भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं ॥ १३ ॥

भूतार्थसे जाने अजीव जीव, पुण्य पाप रु निर्जरा।
आस्त्रव संवर बन्ध मुक्ति, ये हि समकित जानना ॥१३॥

अर्थ :—भूतार्थ नयसे ज्ञात जीव, अजीव और पुण्य, पाप तथा आस्त्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष—यह नव तत्त्व सम्यक्त्व है।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि ॥ १४ ॥

अनबद्धस्पृष्ट अनन्य अरु, जो नियत देखे आत्मको।
अविशेष अनसंयुक्त उसको शुद्धनय तू जानजो ॥१४॥

अर्थ :—जो नय आत्माको बंध रहित और परके स्पर्शसे रहित, अन्यत्व रहित, चलाचलता रहित, विशेष रहित, अन्यके संयोग रहित—ऐसे पाँच भावरूप देखता है, उसे हे शिष्य! तुं शुद्ध नय जान।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससन्तमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं ॥ १५ ॥

अनबद्धस्पृष्ट, अनन्य, जो अविशेष देखे आत्मको,
वो द्रव्य और जु भाव, जिनशासन सकल देखे अहो ॥१५॥

अर्थ :—जो पुरुष आत्माको अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, अविशेष (तथा उपलक्षणसे नियत और असंयुक्त) देखता है, वह सर्व जिनशासनको देखता है—कि जो जिनशासन बाह्य द्रव्यश्रुत और अभ्यंतर ज्ञानरूप भावश्रुतवाला है।

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परे त्ति णादूणं।
तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं ॥ ३४ ॥

सब भाव पर ही जान प्रत्याख्यान भावोंका करे,
इससे नियमसे जानना कि ज्ञान प्रत्याख्यान है ॥३४॥

अर्थ :—जिससे 'अपनेसे अतिरिक्त सर्व पदार्थ पर है' ऐसा जानकर प्रत्याख्यान करता है—त्याग करता है, इसलिये प्रत्याख्यान ज्ञान ही है ऐसा नियमसे जानना। अपने ज्ञानमें त्यागरूप अवस्था ही प्रत्याख्यान है, दूसरा कुछ नहीं है।

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि ॥ ३८ ॥

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

मैं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदृग हूँ यथार्थसे,
कुछ अन्य वो मेरा तनिक परमाणुमात्र नहीं अरे! ॥३८॥

अर्थ :—दर्शनज्ञानचारित्ररूप परिणत आत्मा यह जानता है कि—निश्चयसे मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शनज्ञानमय हूँ, सदा अरूपी हूँ, किंचित्मात्र भी अन्य परद्रव्य परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है यह निश्चय है।

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया।
गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स ॥ ५६ ॥

वर्णादि गुणस्थानान्त भाव जु जीवके व्यवहारसे,
पर कोई भी ये भाव नहिं हैं जीवके निश्चयविषैं ॥५६॥

अर्थ :—यह वर्णसे लेकर गुणस्थान पर्यंत जो जो भावो कहनेमें आये, वो सब व्यवहारनयसे तो जीवके है। (इसलिये सूत्रमें कहे हैं) लेकिन निश्चयनयके मतमें उनमेंसे कोई भी जीवके नहीं।

❀

२. कर्ता-कर्मका स्वरूप

(2) जीव परका कर्ता नहीं है, लेकिन अपने भावका कर्ता है, यह बतानेवाला स्वरूप :—

ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हं पि ॥ ८१ ॥
एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण।
पोग्गलकम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं ॥ ८२ ॥

जीव कर्मगुण करता नहीं, नहिं जीवगुण कर्म हि करे।
अन्योन्यके हि निमित्तसे परिणाम दोनोंके बने ॥८१॥

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

इस हेतुसे आत्मा हुआ कर्ता स्वयं निज भाव ही।
पुद्गलकरमकृत सर्व भावोंका कभी कर्ता नहीं ॥८२॥

अर्थ :—जीव कर्मके गुणोको करता नहीं, उसी तरह कर्म जीवके गुणोंको करता नहीं; परंतु परस्पर निमित्तसे दोनोंके परिणाम जानो। इस कारणसे आत्मा अपने ही भावसे कर्ता (कहा जाता) है; परंतु पुद्गलकर्मसे किये गये समस्त भावोंका कर्ता नहीं है।

णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि।
वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं ॥ ८३ ॥

आत्मा करे निजको हि यह मन्तव्य निश्चय नयहिका,
अरु भोगता निजको हि आत्मा, शिष्य यों तू जानना ॥८३॥

अर्थ :—निश्चयनयका ऐसा मत है कि आत्मा अपने को ही करता है और फिर आत्मा अपनेको ही भोगता है, ऐसा हे शिष्य! तूं जान।

उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावो य णादव्वो ॥ ८९ ॥

है मोहयुत उपयोगका परिणाम तीन अनादिका।
—मिथ्यात्व अरु अज्ञान, अविरतभाव ये त्रय जानना ॥८६॥

अर्थ :—अनादिसे मोहयुक्त होनेसे, उपयोगके अनादिसे लेकर तीन परिणाम हैं; वे मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरतिभाव (ऐसे तीन) जानना।

एदेसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो।
जं सो करेदि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता ॥ ९० ॥

इससे हि है उपयोग त्रयविध, शुद्ध निर्मल भाव जो।
जो भाव कुछ भी वह करे, उस भावका कर्ता बने ॥९०॥

अर्थ :—अनादिसे ये तीन प्रकार परिणाम विकार होनेसे आत्माका उपयोग–चूंकि (शुद्धनयसे) वह शुद्ध निरंजन (एक) भाव है, तथापि–तीन

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

प्रकारका होता हुआ, वह उपयोग जिस (विकारी) भावको स्वयं करता है, उस भावका वह कर्ता होता है।

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स।
कम्मत्तं परिणमदे तम्हि सयं पोग्गलं दव्वं ॥ ९१ ॥

जो भाव जीव करे स्वयं, उस भावका कर्ता बने।
उस ही समय पुद्गल स्वयं, कर्मत्वरूप हि परिणमे ॥६१॥

अर्थ :—आत्मा जिस भावको करता है उस भावका वह कर्ता होता है; उसके कर्ता होने पर पुद्गलद्रव्य अपने आप कर्मरूप परिणमित होता है।

जदि सो परदव्वाणि य करेज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज।
जम्हा ण तम्मओ तेण सो ण तेसिं हवदि कत्ता ॥ ९९ ॥

परद्रव्यको जीव जो करे, तो जरूर वो तन्मय बने।
पर वो नहीं तन्मय हुआ, इससे न कर्ता जीव है ॥६६॥

अर्थ :—यदि आत्मा परद्रव्योंको करे तो वह नियमसे तन्मय अर्थात् परद्रव्यमय हो जाय, किन्तु तन्मय नहीं है, इसलिये वह उनका कर्ता नहीं है।

जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता।
तं तस्स होदि कम्मं सो तस्स दु वेदगो अप्पा ॥ १०२ ॥

जो भाव जीव करे शुभाशुभ उसहिका कर्ता बने।
उसका बने वह कर्म, आत्मा उसहिका वेदक बने ॥१०२॥

अर्थ :—आत्मा जिस शुभ या अशुभ (अपने) भावको करता है उस भावका वह वास्तवमें कर्ता होता है, वह (भाव) उसका कर्म होता है और वह आत्मा उसका (उस भावरूप कर्मका) भोक्ता होता है।

जो जम्हि गुणे दव्वे सो अण्णम्हि दु ण संकमदि दव्वे।
सो अण्णमसंकंतो कह तं परिणामए दव्वं ॥ १०३ ॥

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

जो द्रव्य जो गुण-द्रव्यमें, परद्रव्यरूप न संक्रमे।
अनसंक्रमा किस भाँति वह परद्रव्य प्रणमाये अरे! १०३॥

अर्थ :—जो वस्तु (अर्थात् द्रव्य) जिस द्रव्यमें और गुणमें वर्तती है, वह अन्य द्रव्यमें तथा गुणमें संक्रमणको प्राप्त नहीं होती (बदलकर अन्यमें नहीं मिल जाती); अन्यरूपसे संक्रमणको प्राप्त न होती हुई वह (वस्तु), अन्य वस्तुको कैसे परिणमन करा सकती है?

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स।
णाणिस्स स णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स॥ १२६॥

जिस भावको आत्मा करे, कर्ता बने उस कर्मका।
वह ज्ञानमय है ज्ञानिका, अज्ञानमय अज्ञानिका॥१२६॥

अर्थ :—आत्मा जिस भावको करता है, उस भावरूप कर्मका वह कर्ता होता है; ज्ञानीको तो वह भाव ज्ञानमय है और अज्ञानीको अज्ञानमय है।

णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो।
जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा हु णाणमया॥ १२८॥
अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायदे भावो।
जम्हा तम्हा भावा अण्णाणमया अणाणिस्स॥ १२९॥

ज्यों ज्ञानमय को भावमेंसे ज्ञानभाव हि उपजते।
यों नियत ज्ञानीजीवके सब भाव ज्ञानमयी बने॥१२८॥

अज्ञानमय को भावसे अज्ञानभाव हि ऊपजे।
इस हेतुसे अज्ञानिके अज्ञानमय भाव हि बने॥१२९॥

अर्थ :—क्योंकि ज्ञानमय भावमेंसे ज्ञानमय ही भाव उत्पन्न होते है, इसलिये ज्ञानीके सर्व भाव वास्तवमें ज्ञानमय ही होते है। और क्योंकि अज्ञानमय भावमेंसे अज्ञानमय ही भाव उत्पन्न होते है, इसलिये अज्ञानीके भाव अज्ञानमय ही होते है।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

कणयमया भावादो जायंते कुंडलादओ भावा।
अयमयया भावादो जह जायंते दु कडयादी ॥१३०॥

अण्णाणमया भावा अणाणिणो बहुविहा वि जायंते।
णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति ॥१३१॥

ज्यों कनकमय को भावमेंसे कुण्डलादिक ऊपजे,
पर लोहमय को भावसे कटकादि भावों नीपजे; ॥१३०॥

त्यों भाव बहुविध ऊपजे अज्ञानमय अज्ञानिके,
पर ज्ञानिके तो सर्व भावहि ज्ञानमय निश्चय बने ॥१३१॥

अर्थ :—जैसे स्वर्णमय भावमेंसे स्वर्ममय कुण्डल इत्यादि भाव होते हैं और लोहमय भावमेंसे लोहमय कड़ा इत्यादि भाव होते हैं, उसीप्रकार अज्ञानीके (अज्ञानमय भावमेंसे) अनेक प्रकारके अज्ञानमय भाव होते हैं और ज्ञानीके (ज्ञानमय भावमेंसे) सभी ज्ञानमय भाव होते हैं।

❀

३. पुण्य और पापका स्वरूप

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं।
कह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि ॥१४५॥

है कर्म अशुभ कुशील अरु जानो सुशील शुभकर्मको!
किस रीत होय सुशील जो संसारमें दाखिल करे? १४५॥

अर्थ :—अशुभ कर्म कुशील है (–बुरा है) और शुभ कर्म सुशील है (–अच्छा है) ऐसा तुम जानते हो! (किन्तु) वह सुशील कैसे हो सकता है, जो (जीवको) संसारमें प्रवेश कराता है?

सोवण्णियं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं ॥१४६॥

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

ज्यों लोहकी त्यों कनककी जंजीर जकड़े पुरुषको ।
इस रीतसे शुभ या अशुभ कृत कर्म बांधे जीवको ॥१४६॥

अर्थ :—जैसे सोनेकी बेड़ी भी पुरुषको बाँधती है और लोहेकी भी बाँधती है, इसीप्रकार शुभ तथा अशुभ किया हुआ कर्म जीवको (अविशेषतया) बाँधता है।

परमट्ठम्हि दु अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारेदि ।
तं सव्वं बालतवं बालवदं बेंति सव्वण्हू ॥ १५२ ॥
परमार्थमें नहिं तिष्ठकर, जो तप करें व्रतको धरें ।
तप सर्व उसके बाल अरु, व्रत बाल जिनवरने कहे ॥१५२॥

अर्थ :—परमार्थमें अस्थित जो जीव तप करता है और व्रत धारण करता है, उसके उन सब तप और व्रतको सर्वज्ञदेव बालतप और बालव्रत कहते हैं।

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता ।
परमट्ठबाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विंदंति ॥ १५३ ॥
व्रतनियमको धारे भले, तपशीलको भी आचरे ।
परमार्थसे जो बाह्य वे, निर्वाणप्राप्ती नहिं करे ॥१५३॥

अर्थ :—व्रत और नियमोंको धारण करते हुए भी तथा शील और तप करते हुए भी जो परमार्थसे बाह्य हैं (अर्थात् परम पदार्थरूप ज्ञानका–ज्ञानस्वरूप आत्माका जिसको श्रद्धान नहीं है), वे निर्वाणको प्राप्त नहीं होते।

परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति ।
संसारगमणहेदुं पि मोक्खहेदुं अजाणंता ॥ १५४ ॥
परमार्थबाहिर जीवगण, जानें न हेतू मोक्षका ।
अज्ञानसे वे पुण्य इच्छें, हेतु जो संसारका ॥१५४॥

अर्थ :—जो परमार्थसे बाह्य हैं वे मोक्षके हेतुको न जानते हुए–पुण्य संसारगमनका हेतु होने पर भी अज्ञानसे पुण्यको (मोक्षका हेतु समझकर) चाहते हैं।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

सो सव्वणाणदरिसी कम्मरएण णियेणावच्छण्णो।
संसारसमावण्णो ण विजाणदि सव्वदो सव्वं ॥१६०॥

यह सर्वज्ञानी-दर्शि भी, निज कर्मरज-आच्छादसे।
संसारप्राप्त न जानता वह सर्वको सब रीतिसे ॥१६०॥

अर्थ :—वह आत्मा (स्वभावसे) सर्वको जानने–देखनेवाला है तथापि अपने कर्ममलसे लिप्त होता हुआ–व्याप्त होता हुआ संसारको प्राप्त हुआ, वह सर्व प्रकारसे सर्वको नहीं जानता।

❀

४. आस्त्रवका स्वरूप

[जीवमें होते विकारी भाव (आस्त्रव) त्यागने योग्य हैं, ऐसा बतानेवाला स्वरूप]

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य सण्णसण्णा दु।
बहुविहभेया जीवे तस्सेव अणण्णपरिणामा ॥१६४॥
णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति।
तेसिं पि होदि जीवो य रागदोसादिभावकरो ॥१६५॥

मिथ्यात्व अविरत अरु कषायें, योग संज्ञ असंज्ञ हैं।
ये विविध भेद जु जीवमें, जीवके अनन्य हि भाव हैं ॥१६४॥

अरु वे हि ज्ञानावरणआदिक कर्मके कारण बनैं।
उनका भि कारण जीव बने, जो रागद्वेषादिक करे ॥१६५॥

अर्थ :—मिथ्यात्व, अविरमण, कषाय और योग—यह आस्त्रव संज्ञ (चेतनके विकार) भी है और असंज्ञ (पुद्गलके विकार) भी हैं। विविध भेदवाले संज्ञ आस्त्रव–जो कि जीवमें उत्पन्न होते हैं वे–जीवके ही अनन्य परिणाम हैं। और असंज्ञ आस्त्रव ज्ञानावरणादि कर्मके कारण (निमित्त) होते हैं और उनका भी (असंज्ञ आस्त्रवोंके भी कर्मबंधका निमित्त होनेमें) रागद्वेषादि भाव करनेवाला जीव कारण (निमित्त) होता है।

जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोण्हं पि ।
अण्णाणी ताव दु सो कोहादिसु वट्टदे जीवो ॥ ६९ ॥

कोहादिसु वट्टंतस्स तस्स कम्मस्स संचओ होदि ।
जीवस्सेवं बंधो भणिदो खलु सव्वदरिसीहिं ॥७०॥

रे आत्म-आस्त्रवका जहाँ तक भेद जीव जाने नहीं,
क्रोधादिमें स्थिति होय है अज्ञानि ऐसे जीवकी ॥६९॥

जीव वर्तता क्रोधादिमें, तब करम संचय होय है,
सर्वज्ञने निश्चय कहा, यों बन्ध होता जीवके ॥७०॥

अर्थ :—जीव जब तक आत्मा और आस्त्रव–इन दोनोंके अंतर और भेदको नहीं जानता तब तक वह अज्ञानी रहता हुआ क्रोधादिक आस्त्रवोंमें प्रवर्तता है; क्रोधादिकमें प्रवर्तमान उसके कर्मका संचय होता है। वास्तवमें इसप्रकार जीवके कर्मोंका बन्ध सर्वज्ञदेवोंने कहा है।

जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव ।
णादं होदि विसेसंतरं तु तइया ण बंधो से ॥७१॥

यह जीव ज्यों ही आस्त्रवोंका त्यों हि अपने आत्मका,
जाने विशेषान्तर, तदा बन्धन नहीं उसको कहा ॥७१॥

अर्थ :—जब यह जीव आत्माका और आस्त्रवोंके अंतर और भेदको जानता है तब उसे बंध नहीं होता।

णादूण आसवाणं असुचित्तं च विवरीयभावं च ।
दुक्खस्स कारणं ति य तदो णियत्तिं कुणदि जीवो ॥७२॥

अशुचिपना, विपरीतता ये आस्त्रवोंके जानके,
अरु दुःखकारण जानके, इनसे निवर्तन जीव करे ॥७२॥

अर्थ :—आस्त्रवोंकी अशुचिता और विपरीतता तथा वे दुःखके कारण हैं, ऐसा जानकर जीव उनसे निवृत्ति करता है।

जीवणिबद्धा एदे अधुव अणिच्चा तहा असरणा य।
दुक्खा दुक्खफल त्ति य णादूण णिवत्तदे तेहिं ॥७४॥

ये सर्व जीवनिबद्ध, अध्रुव, शरणहीन, अनित्य हैं,
ये दुःख, दुःखफल जानके इनसे निवर्तन जीव करे ॥७४॥

अर्थ :—यह आस्रव जीवके साथ निबद्ध है, अध्रुव हैं, अनित्य हैं तथा अशरण हैं और वे दुःख रूप हैं, दुःख ही जिनका फल है—ऐसा जानकर ज्ञानी उनसे निवृत्त होता है।

❀

५. संवर का स्वरूप

[जीवके शुभाशुभ भावोंको कैसे रोकाना वह बतानेवाला स्वरूप]

उवओगे उवओगो कोहादिसु णत्थि को वि उवओगो।
कोहो कोहे चेव हि उवओगे णत्थि खलु कोहो ॥१८१॥

उपयोगमें उपयोग, को उपयोग नहिं क्रोधादिमें।
है क्रोध क्रोधविषै हि निश्चय, क्रोध नहिं उपयोगमें ॥१८१॥

अर्थ :—उपयोग उपयोगमें है, क्रोधादिमें कोई भी उपयोग नहीं है; और क्रोध क्रोधमें ही है, उपयोगमें निश्चयसे क्रोध नहीं है।

जह कणयमग्गितवियं पि कणयभावं ण तं परिच्चयदि।
तह कम्मोदयतविदो ण जहदि णाणी दु णाणित्तं ॥१८४॥

ज्यों अग्नितप्त सुवर्ण भी, निज स्वर्णभाव नहीं तजे।
त्यों कर्मउदय-प्रतप्त भी, ज्ञानी न ज्ञानिपना तजे ॥१८४॥

अर्थ :—जैसे सुवर्ण अग्निसे तप्त होता हुआ भी अपने सुवर्णत्वको नहीं छोड़ता, इसीप्रकार ज्ञानी कर्मके उदयसे तप्त होता हुआ भी ज्ञानित्वको नहीं छोड़ता।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धं चेवप्पयं लहदि जीवो ।
जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहदि ॥ १८६ ॥

जो शुद्ध जाने आत्मको, वह शुद्ध आत्म ही प्राप्त हो ।
अनशुद्ध जाने आत्मको, अनशुद्ध आत्म हि प्राप्त हो ॥१८६॥

अर्थ :—शुद्ध आत्माको जानता हुआ–अनुभव करता हुआ जीव शुद्ध आत्माको ही प्राप्त करता है और अशुद्ध आत्माको जानता हुआ–अनुभवता हुआ जीव अशुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है।

अप्पाणमप्पणा रुंधिऊण दोपुण्णपावजोगेसु ।
दंसणणाणम्हि ठिदो इच्छाविरदो य अण्णम्हि ॥ १८७ ॥
जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा ।
ण वि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं ॥ १८८ ॥
अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अणण्णमओ ।
लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं ॥ १८९ ॥

शुभ-अशुभसे जो रोककर निज आत्मको आत्मा हि से ।
दर्शन अरु ज्ञाने ठहर, परद्रव्यइच्छा परिहरे ॥१८७॥
जो सर्वसंगविमुक्त, ध्यावे आत्मसे आत्मा हि को ।
नहिं कर्म अरु नोकर्म, चेतक चेतता एकत्वको ॥१८८॥
वह आत्म ध्याता, ज्ञानदर्शनमय, अनन्यमयी हुआ ।
बस अल्प काल जु कर्मसे परिमोक्ष पावे आत्मका ॥१८९॥

अर्थ :—आत्माको आत्माके द्वारा दो पुण्य–पापरूप शुभाशुभ योगोंसे रोककर दर्शनज्ञानमें स्थित होता हुआ और अन्य (वस्तु)की इच्छासे विरत होता हुआ, जो आत्मा (इच्छारहित होनेसे) सर्वसंगसे रहित होता हुआ, (अपने) आत्माको आत्माके द्वारा ध्याता है, कर्म तथा नोकर्मको नहीं ध्याता, एवं (स्वयं) चेतयिता[1] (होनेसे) एकत्वको ही चिंतवन करता है–चेतता है–अनुभव करता है, वह (आत्मा) आत्माको ध्याता हुआ, दर्शनज्ञानमय और अनन्यमय[2] होता हुआ अल्प कालमें ही कर्मोसे रहित आत्माको प्राप्त करता है।

१. चेतयिता = चेतनार, देखनार जानना । २. अनन्यमय = अन्यमय नही है ऐसा ।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

६. निर्जरा का स्वरूप

[संवरपूर्वक जो पूर्वके विकारी भावोंको तथा पूर्वे बांधे हुए कर्मोंको नष्ट करता है, उसे निर्जरा कहते है–यह बतानेवाला स्वरूप।]

उदयविवागो विविहो कम्माणं वण्णिदो जिणवरेहिं ।
ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमेक्को ॥ १९८॥

कर्मों हि के जु अनेक, उदय विपाक जिनवरने कहे ।
वे मुझ स्वभाव जु हैं नहीं, मैं एक ज्ञायकभाव हूँ ॥१९८॥

अर्थ :—कर्मोके उदयका विपाक (फल) जिनेन्द्रदेवोंने अनेक प्रकारका कहा है वे मेरे स्वभाव नहीं है; मैं तो एक ज्ञायकभाव हूँ।

पोग्गलकम्मं रागो तस्स विवागोदओ हवदि एसो ।
ण दु एस मज्झ भावो जाणगभावो हु अहमेक्को ॥ १९९ ॥

पुद्गलकर्मरूप रागका हि, विपाकरूप है उदय ये ।
ये है नहीं मुझभाव, निश्चय एक ज्ञायकभाव हूँ ॥१९९॥

अर्थ :—राग पुद्गलकर्म है, उसका विपाकरूप उदय यह है, यह मेरा भाव नहीं है, मैं तो निश्चयसे एक ज्ञायकभाव हूँ।

एवं सम्मद्दिट्ठी अप्पाणं मुणदि जाणगसहावं।
उदयं कम्मविवागं च मुयदि तच्चं वियाणंतो ॥ २००॥

सद्दृष्टि इस रीत आत्मको, ज्ञायकस्वभाव हि जानता ।
अरु उदय कर्मविपाकको वह, तत्त्वज्ञायक छोड़ता ॥२००॥

अर्थ :—इसप्रकार सम्यग्दृष्टि आत्माको (अपनेको) ज्ञायकस्वभाव जानता है और तत्त्वको अर्थात् यथार्थ स्वरूपको जानता हुआ कर्मके विपाकरूप उदयको छोड़ता है।

परमाणुमित्तयं पि हु रागादीणं तु विज्जदे जस्स।
ण वि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरो वि ॥ २०१ ॥

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अणुमात्र भी रागादिका सद्भाव है जिस जीवको।
वह सर्वआगमधर भले ही, जानता नहिं आत्मको ॥२०१॥

अर्थ :—वास्तवमें जिस जीवके परमाणु मात्र–लेशमात्र–भी रागादिक वर्तता है, वह जीव भले ही सर्वागमका धारी (समस्त आगमोंको पढ़ा हुआ) हो तथापि आत्माको नहीं जानता।

मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज।
णादेव अहं जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झ ॥ २०८॥

परिग्रह कभी मेरा बने, तो मैं अजीव बनूं अरे।
मैं नियमसे ज्ञाता हि, इससे नहिं परिग्रह मुझ बने ॥२०८॥

अर्थ :—यदि परद्रव्य–परिग्रह मेरा हों तो मैं अजीवत्वको प्राप्त हो जाऊँ। क्योंकि मैं तो ज्ञाता ही हूँ, इसलिये (परद्रव्यरूप) परिग्रह मेरा नहीं है।

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं।
जम्हा तम्हा गच्छदु तह वि हु ण परिग्गहो मज्झ ॥ २०९॥

छेदाय या भेदाय, को ले जाय, नष्ट बनो भले।
या अन्य को रीत जाय, पर परिग्रह न मेरा है अरे ॥२०९॥

अर्थ :— छिद जावे अथवा भिद जावे अथवा कोई ले जाये, अथवा नष्ट हो जाये; अथवा चाहे जिस प्रकारसे चला जाये, फिर भी वास्तवमें परिग्रह मेरा नहीं है।

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे धम्मं।
अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥ २१०॥

अनिच्छक कहा अपरिग्रही, नहिं पुण्य इच्छा ज्ञानिके।
इससे न परिग्रहि पुण्यका वह, पुण्यका ज्ञायक रहे ॥२१०॥

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अर्थ :—अनिच्छकको अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी धर्मको (पुण्यको) नहीं चाहता, इसलिये वह धर्मका परिग्रही नहीं है, (किन्तु) (धर्मका) ज्ञायक ही है।

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदि अधम्मं ।
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥ २११ ॥

अनिच्छक कहा अपरिग्रही, नहिं पाप इच्छा ज्ञानिके ।
इससे न परिग्रही पापका वह, पापका ज्ञायक रहे ॥२११॥

अर्थ :—अनिच्छकको अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी अधर्मको (पापको) नहीं चाहता, इसलिये वह अधर्मका परिग्रही नहीं है, (किन्तु) (अधर्मका) ज्ञायक ही है।

सम्मादिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण ।
सत्तभयविप्पमुक्का जम्हा तम्हा दु णिस्संका ॥ २२८ ॥

सम्यक्ति जीव होते निःशंकित इसहि से निर्भय रहें ।
हैं सप्तभयप्रविमुक्त वे, इसहीसे वे निःशंक हैं ॥२२८॥

अर्थ :—सम्यग्दृष्टि जीव निःशंक होते है, इसलिये निर्भय होते है; और क्योंकि वे सप्त भयसे रहित होते है, इसलिये निःशंक होते हैं (–अडोल होते हैं)।

जो चत्तारि वि पाए छिंददि ते कम्मबंधमोहकरे ।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २२९ ॥

जो कर्मबन्धनमोहकर्त्ता, पाद चारों छेदता ।
चिन्मूर्ति वो शङ्कारहित, सम्यक्त्वदृष्टी जानना ॥२२९॥

अर्थ :—जो [1]चेतयिता, कर्मबंध सम्बन्धी मोह करनेवाले (अर्थात् जीव निश्चयतः कर्मके द्वारा बंधा हुआ है ऐसा भ्रम करनेवाले) मिथ्यात्वादि भावरूप चारों पादोंको छेदता है, उसको निःशंक सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

---

१ चेतयिता = चेतनेवाला, जानने–देखनेवाला; आत्मा

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

जो दु ण करेदि कंखं कम्मफलेसु तह सव्वधम्मेसु ।
सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २३० ॥

जो कर्मफल अरु सर्व धर्मोंकी न काँक्षा धारता ।
चिन्मूर्ति वो काँक्षारहित, सम्यग्दृष्टी जानना ॥२३०॥

अर्थ :—जो चेतयिता कर्मोंके फलोंके प्रति तथा सर्व धर्मोंके प्रति कांक्षा नहीं करता उसको निष्कांक्ष सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

जो ण करेदि दुगुंछं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं ।
सो खलु णिव्विदिगिच्छो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २३१ ॥

सब वस्तुधर्मविषैं जुगुप्साभाव जो नहिं धारता ।
चिन्मूर्ति निर्विचिकित्स वह, सद्दृष्टि निश्चय जानना ॥२३१॥

अर्थ :—जो चेतयिता सभी धर्मों (वस्तुके स्वभावों) के प्रति जुगुप्सा (ग्लानि) नहीं करता, उसको निश्चयसे निर्विचिकित्स (विचिकित्सा दोषसे रहित) सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

जो हवदि असम्मूढो चेदा सद्दिट्ठि सव्वभावेसु ।
सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २३२ ॥

सम्मूढ़ नहिं सब भावमें जो,—सत्यदृष्टी धारता ।
वह मूढ़दृष्टिविहीन सम्यग्दृष्टि निश्चय जानना ॥२३२॥

अर्थ :—जो चेतयिता समस्त भावोंमें अमूढ़ है–यथार्थ दृष्टिवाला है, उसको निश्चयसे अमूढ़दृष्टि सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं ।
सो उवगूहणकारी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २३३ ॥

जो सिद्धभक्तीसहित है, गोपन करे सब धर्मका ।
चिन्मूर्ति वह उपगुहनकर सम्यक्तदृष्टी जानना ॥२३३॥

अर्थ :—जो (चेतयिता) सिद्धकी (शुद्धात्माकी) भक्तिसे युक्त है

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

और पर वस्तुके सर्व धर्मों को गोपनेवाला है (अर्थात् रागादि परभावोंमें युक्त नहीं होता) उसको उपगूहन करनेवाला सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

उम्मग्गं गच्छंतं सगं पि मग्गे ठवेदि जो चेदा।
सो ठिदिकरणाजुत्तो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २३४ ॥

उन्मार्ग जाते स्वात्मको भी, मार्गमें जो स्थापता।
चिन्मूर्ति वह थितिकरणयुत, सम्यक्तदृष्टि जानना ॥२३४॥

अर्थ :—जो चेतयिता उन्मार्गमें जाते हुए अपने आत्माको भी मार्गमें स्थापित करता है, वह स्थितिकरणयुक्त सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

जो कुणदि वच्छलत्तं तिण्हं साहूण मोक्खमग्गम्हि।
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २३५ ॥

जो मोक्षपथमें 'साधु'त्रयका वत्सलत्व करे अहा !
चिन्मूर्ति वह वात्सल्ययुत, सम्यक्त्वदृष्टी जानना ॥२३५॥

अर्थ :—जो (चेतयिता) मोक्षमार्गमें स्थित सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्ररूप तीन साधकों-साधनोंके प्रति (अथवा व्यवहारसे आचार्य-उपाध्याय और मुनि-इन तीन साधुओंके प्रति) वात्सल्य करता है, वह वत्सलभावसे युक्त सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

विज्जारहमारूढो मणोरहपहेसु भमइ जो चेदा।
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २३६ ॥

चिन्मूर्ति मन-रथपन्थमें, विद्यारथारूढ घूमता।
जिनराजज्ञानप्रभावकर सम्यक्तदृष्टी जानना ॥२३६॥

अर्थ :—जो चेतयिता विद्यारूप रथ पर आरुढ़ हुआ (-चढ़ा हुआ) मनरूप रथके पथमें (ज्ञानरूप रथके चलनेके मार्गमें) भ्रमण करता है, वह जिनेन्द्र भगवानके ज्ञानकी प्रभावना करनेवाला सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

७. बंधका स्वरूप

[जीवको रागद्वेषसे बंध होता है, इसलिये बंध त्यागने योग्य हैं, वह बतानेवाला स्वरूप]

जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥ २४७॥

जो मानता—मैं मारुँ पर अरु घात पर मेरा करे ।
सो मूढ है, अज्ञानि है, विपरीत इससे ज्ञानि है ॥२४७॥

अर्थ :—जो यह मानता है कि 'मैं पर जीवोंको मारता हूँ और पर जीव मुझे मारते हैं'—वह मूढ़ (–मोही) है, अज्ञानी हैं और इससे विपरीत (जो ऐसा नहीं मानता वह) ज्ञानी हैं।

जो ण मरदि ण य दुहिदो सो वि य कम्मोदएण चेव खलु ।
तम्हा ण मारिदो णो दुहाविदो चेदि ण दु मिच्छा ॥ २५८॥

अरु नहिं मरे, नहिं दुखि बने, वे कर्म-उदयोंसे बने ।
'मैंने न मारा दुखि करा'—क्या मत न तुझ मिथ्या अरे ? ॥२५८॥

अर्थ :—और जो न मरता है और न दुःखी होता है, वह भी वास्तवमें कर्मोदयसे ही होता है; इसलिये ''मैंने नहीं मारा, मैंने दुःखी नहीं किया'' ऐसा तेरा अभिप्राय क्या वास्तवमें मिथ्या नहीं है ?

एसा दु जा मदी दे दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्ते त्ति ।
एसा दे मूढमदी सुहासुहं बंधदे कम्मं ॥ २५९॥

यह बुद्धि तेरी—'दुखित अवरु सुखी करूँ हूँ जीवको' ।
वह मूढमति तेरी अरे! शुभ अशुभ बांधे कर्मको ॥२५९॥

अर्थ :—तेरी यह जो बुद्धि है, कि मैं जीवों को दुःखी–सुखी करता हूँ, यही तेरी मूढ़बुद्धि ही (मोहस्वरूप बुद्धि ही) शुभाशुभ कर्मको बाँधती है।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेउ मा व मारेउ।
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥ २६२॥

मारो—न मारो जीवको, है बन्ध अध्यवसानसे।
—यह आतमाके बन्धका, संक्षेप निश्चयनय विषे ॥२६२॥

अर्थ :—जीवोंको मारो अथवा न मारो–कर्मबंध अध्यवसानसे ही होता है। यह निश्चयनयसे जीवोंके बंधका संक्षेप है।

अज्झवसाणणिमित्तं जीवा बज्झंति कम्मणा जदि हि।
मुच्चंति मोक्खमग्गे ठिदा य ता किं करेसि तुमं ॥ २६७॥

सब जीव अध्यवसानकारण, कर्मसे बँधते जहाँ।
अरु मोक्षमग थित जीव छूटें, तू हि क्या करता भला? ॥२६७॥

अर्थ :—हे भाई! यदि वास्तवमें अध्यवसानके निमित्तसे जीव कर्मसे बंधते हैं और मोक्षमार्गमें स्थित छूटते हैं, तो तू क्या करता है? (तेरा तो बाँधने–छोड़नेका अभिप्राय व्यर्थ गया।)

सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण तिरियणेरइए।
देवमणुए य सव्वे पुण्णं पावं च णेयविहं ॥ २६८॥
धम्माधम्मं च तहा जीवाजीवे अलोगलोगं च।
सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण अप्पाणं ॥ २६९॥

तिर्यंच, नारक, देव, मानव, पुण्य-पाप अनेक जे।
उन सर्वरूप करै जु निजको, जीव अध्यवसानसे ॥२६८॥

अरु त्यों ही धर्म-अधर्म, जीव-अजीव, लोक-अलोक जे।
उन सर्वरूप करै जु निजको, जीव अध्यवसानसे ॥२६९॥

अर्थ :—जीव अध्यवसानसे तिर्यंच, नारक, देव और मनुष्य इन सर्व पर्यायों तथा अनेक प्रकारके पुण्य और पाप–इन सबरूप अपनेको करता है। और उसीप्रकार जीव अध्यवसानसे धर्म–अधर्म, जीव–अजीव और लोक–अलोक–इन सबरूप अपनेको करता है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

एदाणि णत्थि जेसिं अज्झवसाणाणि एवमादीणि ।
ते असुहेण सुहेण व कम्मेण मुणी ण लिप्पंति ॥ २७० ॥

इन आदि अध्यवसान विधविध वर्तते नहिं जिनहिको ।
शुभ-अशुभ कर्म अनेकसे, मुनिराज वे नहिं लिप्त हों ॥२७०॥

अर्थ :—यह (पूर्व कथित) तथा ऐसे और भी अध्यवसान जिनके नहीं है, वे मुनि अशुभ या शुभ कर्मसे लिप्त नहीं होते।

एवं ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणएण ।
णिच्छयणयासिदा पुण मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥ २७२ ॥

व्यवहारनय इस रीत जान, निषिद्ध निश्चयनयहिसे ।
मुनिराज जो निश्चयनयाश्रित, मोक्षकी प्राप्ती करे ॥२७२॥

अर्थ :—इसप्रकार (पराश्रित) व्यवहारनय निश्चयनयके द्वारा निषिद्ध जान; निश्चयनयके आश्रित मुनि निर्वाणको प्राप्त होते हैं।

वदसमिदीगुत्तीओ सीलतवं जिणवरेहि पण्णत्तं ।
कुव्वंतो वि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठी दु ॥ २७३ ॥

जिनवरप्ररूपित व्रत, समिति, गुप्ती अवरु तप शीलको ।
करता हुआ भी अभव्य जीव, अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है ॥२७३॥

अर्थ :—जिनवरोंके द्वारा कथित व्रत, समिति, गुप्ति, शील और तप करता हुआ भी अभव्य जीव अज्ञानी और मिथ्यादृष्टि है।

आदा खु मज्झ णाणं आदा मे दंसणं चरित्तं च ।
आदा पच्चक्खाणं आदा मे संवरो जोगो ॥ २७७ ॥

मुझ आत्म निश्चय ज्ञान है, मुझ आत्म दर्शन चरित है ।
मुझ आत्म प्रत्याख्यान अरु, मुझ आत्म संवर-योग है ॥२७७॥

अर्थ :—निश्चयसे मेरा आत्मा ही ज्ञान है, मेरा आत्मा ही दर्शन और चारित्र है, मेरा आत्मा ही प्रत्याख्यान है, मेरा आत्मा ही संवर और योग (–समाधि, ध्यान) है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

८. मोक्ष का स्वरूप

[जीवकी संपूर्ण पवित्रता बतानेवाला स्वरूप]

बंधाणं च सहावं वियाणिदुं अप्पणो सहावं च।
बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणदि ॥ २९३ ॥

रे जानकर बन्धन-स्वभाव, स्वभाव जान जु आत्मका।
जो बन्धमें विरक्त होवे, कर्ममोक्ष करे अहा! ॥२९३॥

अर्थ :—बन्धोंके स्वभावको और आत्माके स्वभावको जानकर बन्धोंके प्रति जो विरक्त होता है, वह कर्मोंसे मुक्त होता है।

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा ॥ २९४ ॥

छेदन करो जीव-बन्धका तुम नियत निज-निज चिह्नसे।
प्रज्ञाछेनीसे छेदते दोनों पृथक हो जात हैं ॥२९४॥

अर्थ :—जीव तथा बन्ध नियत स्वलक्षणोंसे (अपने-अपने निश्चित लक्षणोंसे) छेदे जाते हैं; प्रज्ञारूप छेनीके द्वारा छेदे जाने पर वे नानापन को प्राप्त होते हैं अर्थात् अलग हो जाते हैं।

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
बंधो छेदेदव्वो सुद्धो अप्पा य धेत्तव्वो ॥ २९५ ॥

छेदन होवे जीव-बन्धका जहँ नियत निज-निज चिह्नसे।
वहाँ छोड़ना इस बन्धको, जीव ग्रहण करना शुद्धको ॥२९५॥

अर्थ :—इसप्रकार जीव और बन्ध अपने निश्चित स्वलक्षणोंसे छेदे जाते हैं। वहाँ, बन्धको छेदना चाहिए अर्थात् छोड़ना चाहिए और शुद्ध आत्माको ग्रहण करना चाहिए।

जो ण कुणदि अवराहे सो णिस्संको दु जणवदे भमदि।
ण वि तस्स बज्झिदुं जे चिंता उप्पज्जदि कयाइ ॥ ३०२ ॥

एवम्हि सावराहो बज्झामि अहं तु संकिदो चेदा।
जइ पुण णिरावराहो णिस्संकोहं ण बज्झामि ॥ ३०३ ॥

अपराध जो करता नहीं, निःशंक लोकविषै फिरे।
'बँध जाउँगा' ऐसी कभी, चिंता न उसको होय है ॥३०२॥

त्यों आतमा अपराधी 'मैं बँधता हूँ' यों हि सशंक है।
अरु निरपराधी आतमा, 'नाही बँधूँ' निःशंक है ॥३०३॥

अर्थ :—जो पुरुष अपराध नहीं करता वह लोकमें निशंक घूमता है, क्योंकि उसे बँधनेकी चिन्ता कभी भी उत्पन्न नहीं होती। इसीप्रकार अपराधी आत्मा 'मैं अपराधी हूँ, इसलिये मैं बँधूँगा' इसप्रकार शंकित होता है और यदि अपराध रहित (आत्मा) हो तो 'मैं नहीं बँधूँगा' इसप्रकार निशंक होता है।

*

६. सर्व विशुद्ध ज्ञानका स्वरूप

दिट्ठी जहेव णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव।
जाणइ य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव ॥३२०॥

ज्यों नेत्र, त्यों ही ज्ञान नहिं कारक, नहीं वेदक अहो!
जाने हि कर्मोदय, निरजरा, बन्ध त्यों ही मोक्षको ॥३२०॥

अर्थ :—जैसे नेत्र (दृश्य पदार्थोको करता-भोगता नहीं है, किन्तु देखता ही है), उसी प्रकार ज्ञान अकारक तथा अवेदक है और बन्ध, मोक्ष, कर्मोदय तथा निर्जराको जानता ही है।

ववहारभासिदेण दु परदव्वं मम भणंति अविदिदत्था।
जाणंति णिच्छएण दु ण य मह परमाणुमित्तमवि किंचि ॥ ३२४ ॥

व्यवहारमूढ अतत्त्वविद् परद्रव्यने 'मारुं' कहे,
'परमाणुमात्र न मारुं', ज्ञानी जाणता निश्चय वडे. ३२४.

अर्थ :—जिन्होंने पदार्थके स्वरूपको नहीं जाना है, ऐसे पुरुष व्यवहारके वचनोंको ग्रहण करके 'परद्रव्य मेरा है' ऐसा कहते हैं, लेकिन ज्ञानीजन निश्चयसे जानते हैं कि 'कोई परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है'।

कम्मं जं पुव्वकयं सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं।
तत्तो णियत्तदे अप्पयं तु जो सो पडिक्कमणं॥ ३८३॥

कम्मं जं सुहमसुहं जम्हि य भावम्हि बज्झदि भविस्सं।
तत्तो णियत्तदे जो सो पच्चक्खाणं हवदि चेदा॥ ३८४॥

जं सुहमसुहमुदिण्णं संपडि य अणेयवित्थरविसेसं।
तं दोसं जो चेददि सो खलु आलोयणं चेदा॥ ३८५॥

णिच्चं पच्चक्खाणं कुव्वदि णिच्चं पडिक्कमदि जो य।
णिच्चं आलोचेयदि सो हु चरित्तं हवदि चेदा॥ ३८६॥

शुभ और अशुभ अनेकविध, के कर्म पूरव जो किये।
उनसे निवर्ते आत्मको, वह आतमा प्रतिक्रमण है॥३८३॥

शुभ अरु अशुभ भावी करमका बन्ध हो जिस भावमें।
उससे निवर्तन जो करे वह आतमा पच्चखाण है॥३८४॥

शुभ और अशुभ अनेकविध हैं उदित जो इस कालमें।
उन दोषको जो चेतता, आलोचना वह जीव है॥३८५॥

पचखाण नित्य करे अरु प्रतिक्रमण जो नित्य हि करे।
नित्य हि करे आलोचना, वह आतमा चारित्र है॥३८६॥

अर्थ :—पूर्वकृत जो अनेक प्रकारके विस्तारवाला (ज्ञानावरणीय आदि) शुभाशुभ कर्म है; उससे जो आत्मा अपनेको दूर रखता है, वह आत्मा प्रतिक्रमण है।

भविष्यकालका जो शुभ–अशुभ कर्म जिस भावमें बँधता है। उस भावसे जो आत्मा निवृत्त होता है, वह आत्मा प्रत्याख्यान है।

वर्तमानकालमें उदयागत जो अनेक प्रकारके विस्तारवाला शुभ और

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अशुभ कर्म है, उस दोषको जो आत्मा चेतता है–अनुभव करता है–ज्ञाताभावसे जान लेता है (अर्थात् उसके स्वामित्व–कर्तृत्वको छोड़ देता है), वह आत्मा वास्तवमें आलोचना है।

जो सदा प्रत्याख्यान करता है, सदा प्रतिक्रमण करता है और सदा आलोचना करता है, वह आत्मा वास्तवमें चारित्र है।

ण वि सक्कदि धेत्तुं जं ण विमोत्तुं जं च जं परद्रव्वं।
सो को वि य तस्स गुणो पाउगिओ विस्ससो वा वि॥४०६॥

जो द्रव्य है पर, ग्रहण नहिं, नहिं त्याग उसका हो सके।
ऐसा हि उसका गुण कोई प्रायोगि अरु वैस्त्रसिक है॥४०६॥

अर्थ :—जो परद्रव्य है, वह ग्रहण नहीं किया जा सकता और छोड़ा नहीं जा सकता; ऐसा ही कोई उसका (–आत्माका) [1]प्रायोगिक तथा [2]वैस्त्रसिक गुण है।

मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहि तं चेव झाहि तं चेय।
तत्थेव विहर णिच्चं मा विहरसु अण्णदव्वेसु॥४१२॥

तूं स्थाप निजको मोक्षपथमें, ध्या, अनुभव तू उसे।
उसमें हि नित्य विहार कर, न विहार कर परद्रव्यमें॥४१२॥

अर्थ :—(हे भव्य!) तू मोक्षमार्गमें अपने आत्माको स्थापित कर, उसीका ध्यान कर, उसीको चेत-अनुभव कर और उसीमें निरन्तर विहार कर; अन्य द्रव्योंमें विहार मत कर।

❀

१–प्रायोगिक = विकारी. २ वैस्त्रसिक = शुद्ध

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

पाठ : ८

[मोक्षमार्गका द्वितीय रत्न सम्यग्ज्ञान है, इसलिये अब इसमें लगे हुए दोषका प्रतिक्रमण कहेंगे।]

मइसुइओहिमणपज्जयं तहा केवलं च पंचभेयं।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मि दुक्कडं हुज्ज ॥ २७॥*

अर्थ :—हे भगवान! मैंने मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान वे पाँच प्रकारके ज्ञानोंमेंसे जो कोई ज्ञानकी विराधना की हो–आशातना की हो, उस संबंधी मेरे सर्वे पाप मिथ्या हो।

❀

पाठ : ९

बारह प्रकारके व्रतका स्वरूप

[१] हिंसाका स्वरूप :—

[1]आत्मपरिणामहिंसनहेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत्।
अनृतवचनादि केवलमुदाहृतं शिष्यबोधाय ॥ ४२ ॥

अर्थ :—आत्माके शुद्धोपयोगरूप परिणामोंका घातनेवाला भाव, वह संपूर्ण हिंसा है, असत् वचनादिक भेद मात्र शिष्योंको समजानेके लिए द्रष्टांतरूप कहनेमें आये हैं।

यत्खलु कषाययोगात्प्राणानां द्रव्यभावरूपाणाम्।
व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा ॥ ४३ ॥

---

* पं. नंदलालजीकृत श्रावक प्रतिक्रमण पा. ९९

१. सम्यग्दृष्टि श्रावकको ऐसे शुभभावरूप व्रत होते हैं, मिथ्यादृष्टिको नहीं होते, क्योंकि उसके व्रतको बालव्रत कहे हैं, इसलिये उसे सच्चेव्रत नहीं होते।

२. पुरूषार्थसिद्ध उपायमेंसे।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अर्थ :—यथार्थमें (वास्तवमें) कषाय सहित योगोंसे जो द्रव्य और भावरूप दो प्रकारके प्राणोंका घात करना, वह प्रसिद्ध रीतसे तय हुई हिंसा है।

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥ ४४ ॥

अर्थ :—वास्तवमें रागादि भावोंका प्रगट न होना, वह अहिंसा है और वे रागादि भावोंकी उत्पत्ति होना वह हिंसा है–यह जैन शास्त्रका संक्षिप्त रहस्य है।

[२] असत्यका स्वरूप :—

यदिदं प्रमादयोगादसदभिधानं विधीयते किमपि।
तदनृतमपि विज्ञेयं तद्भेदाः सन्ति चत्वारः ॥ ९१ ॥

अर्थ :—प्रमाद–कषायमें युक्त होते हुए, जो कुछ भी असत् कथन करनेमें आता है, वह वास्तवमें असत्य जानना चाहिए।

[३] चोरीका स्वरूप :—

अवितीर्णस्य ग्रहणं परिग्रहस्य प्रमत्तयोगाद्यत्।
तत्प्रत्येयं स्तेयं सैव च हिंसा वधस्य हेतुत्वात् ॥ १०२ ॥

अर्थ :—जिस प्रमाद–कषायमें युक्त होनेसे, बिना दिए सुवर्ण, वस्त्र आदि परिग्रहका ग्रहण, उसे चोरी जानना और वह घातका कारण होनेसे हिंसा है।

[४] अब्रह्मचर्यका स्वरूप :—

यद्वेदरागयोगान्मैथुनमभिधीयते तदब्रह्म।
अवतरति तत्र हिंसा वधस्य सर्वत्र सद्भावात् ॥ १०७ ॥

अर्थ :—पुरुषवेद, स्त्रीवेद या नपुंसकवेदरूप रागमें युक्त होनेसे जिसे मैथुन कहा जाता है, वह अब्रह्मचर्य है और उसमें सर्वत्र प्राणीका घात होनेसे हिंसा होती है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

[५] परिग्रहका स्वरूप :—

या मूर्च्छा नामेयं विज्ञातव्यः परिग्रहो ह्येषः ।
मोहोदयादुदीर्णो मूर्च्छा तु ममत्वपरिणामः ॥ १११ ॥

अर्थ :—जो मूर्च्छा है वो ही परिग्रह है ऐसा जानना और मोहनीय कर्मके उदयमें युक्त होनेसे, उत्पन्न हुए ममत्व रूप परिणाम वे मूर्च्छा हैं।

उपरोक्त पाँच अव्रत है, उनका त्याग वह व्रत है। श्रावकको एकदेश त्याग होता है और वह अणुव्रत है। उसकी प्रतिज्ञा श्रावकको करनी चाहिए।

[६] दिग्व्रतका स्वरूप :—

प्रविधाय सुप्रसिद्धैर्मर्यादां सर्वतोप्यभिज्ञानैः ।
प्राच्यादिभ्योः दिग्भ्यः कर्तव्या विरतिरविचलिता ॥ १३७ ॥

अर्थ :—समस्त दिशाओंमें सुप्रसिद्ध ग्राम, नदी, पर्वतादि भिन्न भिन्न स्थानो तककी मर्यादा करके पूर्व इत्यादि दिशाओंमें मर्यादाके बाहर गमन नहीं करनेकी प्रतिज्ञा करना।

[७] देशावगासिक (देश) व्रतका स्वरूप :—

तत्रापि च परिमाणं ग्रामापणभवनपाटकादीनाम् ।
प्रविधाय नियतकालं करणीयं विरमणं देशात् ॥ १३९ ॥

अर्थ :—दिग्व्रतमें तय की हुई मर्यादामें से भी ग्राम, बाजार, प्रख्यात इमारत, गली इत्यादिका परिमाण करके, मर्यादावाले क्षेत्र से दूर जानेका, निश्चित काल तक त्यागना चाहिए।

[८] अनर्थदंड (त्याग) व्रतका स्वरूप :—

पापर्द्धिजयपराजयसङ्गरपरदारगमनचौर्याद्याः ।
न कदाचनापि चिन्त्याः पापफलं केवलं यस्मात् ॥ १४१ ॥

अर्थ :—शिकार, जय, पराजय, युद्ध, परस्त्रीगमन, चोरी

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

इत्यादिकका किसी भी समय चिंतवन नहीं करना, क्योंकि वे अनिष्ट ध्यानोंका फल पाप ही है।

[९] सामायिक व्रतका स्वरूप :—

रागद्वेषत्यागान्निखिलद्रव्येषु साम्यमवलम्ब्य ।
तत्त्वोपलब्धिमूलं बहुशः सामायिकं कार्यम् ॥ १४८ ॥

अर्थ :—समस्त पदार्थोके प्रति राग-द्वेषका त्याग करके समभावको ग्रहण करके, आत्मतत्त्वकी स्थिरताका मूल कारण ऐसा सामायिक बार-बार करना।

[१०] पौषधव्रतका स्वरूप :—

मुक्तसमस्तारम्भः प्रोषधदिनपूर्ववासरस्यार्द्धे ।
उपवासं गृह्णीयान्ममत्वमपहाय देहादौ ॥ १५२ ॥
श्रित्वा विविक्तवसतिं समस्तसावद्ययोगमपनीय ।
सर्वेन्द्रियार्थविरतः कायमनोवचनगुप्तिभिस्तिष्ठेत् ॥ १५३ ॥

अर्थ :—समस्त उद्यम (आरंभ)से मुक्त होकर शरीरादिकमें से आत्मबुद्धिका त्याग करके, पौषधके दिनके अगले दिनके दोपहरसे उपवास करना और पौषधके दिन एकान्त स्थानमें स्थित होकर संपूर्ण सावद्ययोगको छोड़कर सभी इन्द्रिय-विषयोंसे विरक्त होकर (का त्याग करके) तीन गुप्तिमें स्थिर होकर धर्मध्यानमें व्यतीत करना।

[११] भोग-उपभोगपरिमाण व्रतका स्वरूप :—

भोगोपभोगमूला विरताविरतस्य नान्यतो हिंसा ।
अधिगम्य वस्तुतत्त्वं स्वशक्तिमपि तावपि त्याज्यौ ॥ १६१ ॥

अर्थ :—श्रावकको भोग-उपभोगके निमित्तसे हिंसा होती है, इसलिये वस्तु-स्वरूपका ज्ञान करके अपनी शक्ति अनुसार भोग-उपभोगको छोड़ना चाहिए।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

[१२] अतिथिसंविभागव्रतका स्वरूप :—

विधिना दातृगुणवता द्रव्यविशेषस्य जातरूपाय ।
स्वपरानुग्रहहेतोः कर्तव्योऽवश्यमतिथये भागः ॥ १६७॥

अर्थ :—दाताके गुणधारक गृहस्थका वह अवश्य कर्तव्य है कि ''निर्ग्रंथ अतिथिको (निर्ग्रंथ मुनिको) स्वके और परके उपकारके हेतुसे देने योग्य वस्तु विधिपूर्वक अवश्य देना।''

❀

पाठ : १०

संलेखनाका स्वरूप

[1]मरणान्तेऽवश्यमहं विधिना सल्लेखनां करिष्यामि ।
इति भावनापरिणतोऽनागतमपि पालयेदिदं शीलम् ॥ १७६॥
मरणेऽवश्यं भाविनि कषायसल्लेखनातनूकरणमात्रे ।
रागादिमन्तरेण व्याप्रियमाणस्य नात्मघातोऽस्ति ॥ १७७॥

अर्थ :—मरणकाल मैं अवश्य विधिपूर्वक समाधिमरण करूँगा, ऐसी भावनारूप परिणति करके, मरणकाल प्राप्त होनेके पहेले ही वह संलेखना व्रत प्राप्त कर लेना चाहिए।

मरण तो अवश्य होनेवाला है, इसलिये कषायके सम्यक् प्रकारसे मंद करनेके उद्यममें प्रवृत्त पुरुषको रागादि भावोंके असद्भावके कारण आत्मघात नहीं है।

❀

१पुरुषार्थसिद्धि उपायमेंसे

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

पाठ : ११
[मिथ्यात्वका स्वरूप]

[1]प्रश्न :—मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर :—मिथ्यात्वप्रकृतिके उदयमें युक्त होनेसे कुदेवमें देवबुद्धि, कुगुरुमें गुरुबुद्धि, कुशास्त्रमें शास्त्रबुद्धि, अतत्वमें तत्त्वबुद्धि, अधर्ममें (कुधर्ममें) धर्मबुद्धि इत्यादि विपरीताभिनिवेश (–अभिप्राय)रूप जीवके परिणामको मिथ्यात्व कहते है। मिथ्यात्व के पाँच भेद है :—(1) एकांतिक मिथ्यात्व, (2) विपरीत मिथ्यात्व, (3) सांशयिक मिथ्यात्व, (4) अज्ञानिक मिथ्यात्व, (5) वैनयिक मिथ्यात्व.

उपरोक्त पाँच भेदोंका स्वरूप :—

(1) पदार्थका स्वरूप अनेक धर्मोवाला होने पर भी उसे एक धर्मवाला मानना वह एकान्तिक मिथ्यात्व है; जैसे आत्माको सर्वथा क्षणिक वा सर्वथा नित्य मानना।

(2) द्रव्यका स्वरूप जिस प्रकारसे है, उससे विपरीत प्रधानरूप विपरीत रुचिको विपरीत मिथ्यात्व कहते है; जैसे कि–शरीरको आत्मा मानना, सग्रंथको निर्ग्रंथ मानना, केवलीके स्वरूपको विपरीत प्रकारसे मानना।

(3) आत्मा स्वयंके कार्यका कर्ता होता होगा कि परवस्तुके कार्यका कर्ता होता होगा ? इत्यादि प्रकारसे संशय रहे उसे सांशयिक मिथ्यात्व कहते है।

(4) जहाँ हिताहित विवेकका कुछ भी सद्भाव न होना, उसे अज्ञानिक मिथ्यात्व कहते है, जैसे कि–पशुवधको वा पापको धर्म समजना।

(5) समस्तदेव और समस्त मतोमें समदर्शीपना [समानपना] मानना उसे वैनयिक मिथ्यात्व कहते है।

उपरोक्त प्रकारसे मिथ्यात्वका स्वरूप जानकर सभी जीवोंको मिथ्यात्व छोड़ देना चाहिये।

---

१. श्री जैनसिद्धांतप्रवेशिकासे

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

पाठ : १२

[चार मंगल]

चत्तारी मंगलं–अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं.

चत्तारी लोगुत्तमा–अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो.

चत्तारी सरणं पव्वज्जामि–अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि.

अर्थ :—मंगलभूत पदार्थ चार ही है–अरिहंत, सिद्ध भगवंत, साधु और केवलिकथित धर्म।

लोकमें उत्तम भी चार ही है–अरिहंतदेव, सिद्ध भगवंतों, साधु और केवलि प्ररुपित धर्म, इसलिये मैं वे चार अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवलि प्ररुपित धर्मका शरण स्वीकार करता हूँ।

*

पाठ : १३

क्षमापना *[खामणा]

हे भगवन्! मैं बहुत भूल गया,
मैंने आपके अमूल्य बचनोंको
लक्षमें लिया नहीं।
आपके कहे हुए अनुपम तत्त्वोंका
मैंने विचार किया नहीं।
आपके प्रणीत किये हुए
उत्तम शीलका सेवन किया नहीं।

* श्रीमद् राजचंद्रकृत मोक्षमालामेंसे.....

आपकी कही हुई दया, शांति
क्षमा और पवित्रता
मैंने पहचाना नहीं।
हे भगवन्! मैं भूला,
भटका, घूमा-फिरा
और अनंत संसारकी,
विडम्बनामें पडा हूँ।
मैं पापी हूँ। मैं बहुत मदोन्मत
और कर्मरजसे मलिन हूँ।
हे परमात्मन्! आपके कहे हुए तत्त्वोंके बिना
मेरा मोक्ष नहीं।
मैं निरंतर प्रपंचमें पड़ा हूँ।
अज्ञानसे अंध हुआ हूँ।
मुझमें विवेक शक्ति नहीं है।
और मैं मूढ़ हूँ, निराश्रित हूँ, अनाथ हूँ।
है निरागी परमात्मन्! अब मैं आपकी,
आपके धर्मकी और आपके मुनियोंकी शरण लेता हूँ।
मेरे अपराधोंका क्षय होकर,
मैं उन सब पापोंसे मुक्त होऊँ,
यह मेरी अभिलाषा है।
पूर्वकृत पापोंका मैं अब
पश्चात्ताप करता हूँ।
ज्यों ज्यों मैं उन सूक्ष्म विचारसे गहरा उतरता हूँ,
त्यों त्यों आपके तत्त्वोंके चमत्कार
मेरे स्वरूपका प्रकाश करते हैं।
आप निरागी, निर्विकारी, सच्चिदानंदस्वरूप
सहजानंदी, अनंतज्ञानी,

अनंतदर्शी और त्रैलोक्यप्रकाशक हैं।
मैं मात्र अपने हितके लिये
आपकी साक्षीमें क्षमा चाहता हूँ।
एक पल भी आपके कहे हुए
तत्त्वोंकी शंका न हो,
आपके बताये हुए मार्गमें अहोरात्र मैं रहूँ,
यही मेरी आकांक्षा और वृत्ति हो!
हे सर्वज्ञ भगवान! आपको मैं विशेष क्या कहुँ?
आपसे कुछ अज्ञात नहीं है।
मात्र पश्चात्तापसे मैं कर्मजन्य पापकी क्षमा चाहता हूँ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

❀

पाठ : १४

क्षमापना (भाग-२)

श्री सीमंधर स्वामी, श्री युगमंधरस्वामी, श्री बाहुस्वामी, श्री सुबाहुस्वामी, श्री संजातकस्वामी, श्री स्वयंप्रभस्वामी, श्री वृषभाननस्वामी, श्री अनंतवीर्यस्वामी, श्री सूरप्रभस्वामी, श्री विशालकीर्तिस्वामी, श्री वज्रधरस्वामी, श्री चंद्राननस्वामी, श्री चंद्रबाहुस्वामी, श्री भुजंगमस्वामी, श्री ईश्वरस्वामी, श्रीनेमप्रभस्वामी, श्री वीरसेनस्वामी, श्री महाभद्रस्वामी, श्री देवयशस्वामी और श्री अजितवीर्यस्वामी-यह नामके धारक पंचमेरु संबंधी विदेहक्षेत्रमें बीस तीर्थंकर अभी बिराजमान है, उन्हें मेरा नमस्कार हो।

उनके प्रति और श्री अरिहंत, श्री सिद्ध भगवान, श्री आचार्य महाराज, श्री उपाध्याय महाराज तथा श्री निर्ग्रंथ मुनिराज और अर्जिकाप्रति, श्रावक-श्राविका प्रति, कोई भी प्रकारसे अविनय, अशातना, अभक्ति, अपराध हो गये हो उन संबंधी मैं क्षमा चाहता हूँ।

चोर्यासी लक्ष जीवयोनिके जो कोई जीवका मेरेसे घात हुआ हो, दूसरोंसे घात करवाया हो वा अनुमोदना की हो, वे सभी मेरे दुष्कृत्य मिथ्या हो।

❀

पाठ : १५

लोगस्स सूत्र

[चौबीस तीर्थंकरकी स्तुति कायोत्सर्गरूपसे कहनेमें आती है।]

[नमस्कार मंत्र बोलना]

(अनुष्टुप छंद)

लोगस्स उज्जोअगरे, धम्मतित्थयरे जिणे;
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसं पि केवली. १.

(आर्या छंद)

उसभमजिअं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च;
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे. २.

सुविहिं च पुप्फदंतं, सीअलसिज्जंसवासुपुज्जं च;
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संति च वंदामि. ३.

कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च;
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च. ४.

एवं मए अभिथुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा;
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु. ५.

कित्तियवंदियमहिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा;
आरुग्गबोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु. ६.

चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा;
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु. ७.

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अर्थ :—(तीर्थंकरोंके स्तवनकी प्रतिज्ञा) स्वर्ग, मृत्यु और पाताल–तीन जगतमें धर्मके प्रकाशको, धर्मतीर्थके स्थापको और राग–द्वेष आदि अंतरंग शत्रुओं पर विजेता ऐसे चौबीस केवलज्ञानी तीर्थंकर और अन्य तीर्थंकरका मैं स्तवन करूँगा–स्तुति करूँगा।

(स्तवनः) श्री वृषभनाथ, श्री अजितनाथ, श्री संभवनाथ, श्री अभिनंदन, श्री सुमतिनाथ, श्री पद्मप्रभ, श्री सुपार्श्वनाथ, श्री चंद्रप्रभ, श्री पुष्पदंत वा श्री सुविधिनाथ, श्री शीतलनाथ, श्री श्रेयांसनाथ, श्री वासुपूज्य, श्री विमलनाथ, श्री अनंतनाथ, श्री धर्मनाथ, श्री शांतिनाथ, श्री कुंथुनाथ, श्री अरनाथ, श्री मल्लिनाथ, श्री मुनिसुव्रत, श्री नमिनाथ, श्री अरिष्टनेमि, श्री पार्श्वनाथ, श्री वर्द्धमानस्वामी—ये चौबीस जिनेश्वरोंकी मैं स्तुति करता हूँ।

[भगवानको प्रार्थना :—] जिन्होंकी मैं स्तुति करता हूँ, जो [1]रजमलसे रहित है, जो जरा–मृत्यु से मुक्त है और जो तीर्थके प्रवर्तक है, वे चौबीस जिनेश्वर और सामान्य केवलीभगवंत भी मुझ पर प्रसन्न हो।

जिनका कीर्तन, वंदन और पूजन नरेन्द्रो और देवेन्द्रोने भी किया है, जो संपूर्ण लोकमें उत्तम है और जिन्होंने सिद्धि प्राप्त की है वे भगवंत मुझे भावारोग्य (राग–द्वेष–रहितदशा) के लिए [2]बोधि और [3]समाधिका उत्तम वर दीजिये।

जो सर्व चंद्रोसे विशेष निर्मल है, सर्व सूर्योसे अधिक प्रकाशमान है और स्वयंभूरमण महासमुद्रसे अधिक गंभीर है, वे सिद्धभगवंतों मुझे सिद्धि दो।

[नमस्कार मंत्र बोलके कायोत्सर्ग पूर्ण करना]

१. रज = द्रव्यकर्म, मल = भावकर्म.

२. बोधि = अप्राप्त ऐसे स. दर्शन–ज्ञान–चारित्रकी प्राप्तिका लाभ.

३. समाधि = प्राप्त स. दर्शनादिका निर्विघ्न वहन करना।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

पाठ : १६

प्रत्याख्यान

दिवसचरिमं पच्चक्खामि*

(सूरे उग्गअे नमोक्कारसहिअं पच्चक्खामि–जब नोकारसी करनी हो तब।)

चउव्विहं पि आहारं—असणं, पाणं, खाईमं, साईमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहस्सागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहि-वित्तियागारेणं वोसरामि।×

अर्थ :—धारणाके अनुसार नमस्कार मंत्र के जाप तक, मैं चार प्रकारके आहार–भोजन, पान, [1]खादिम और [2]स्वादिमका त्याग करता हूँ। ये आहारोंका त्याग चार [3]आगारोके साथ किया है, वे इसप्रकार [4]अनाभोग, [5]सहसाकार, [6]महत्तराकार, [7]सर्वसमाधिप्रत्याकार।

❀

पाठ : १७

नमोत्थुणं

[स्तुतिमंगल वा नमस्कार कीर्तन]

नमोत्थुणं अरिहंताणं, भगवंताणं, आईगराणं, तित्थयराणं, सयंसंबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवरपुंडरियाणं, पुरिस–वर–गंध–हत्थीणं; लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोग–हिआणं, लोग–

---

* दूसरेको पच्चखाण करानेके वक्त ''पच्चक्खाई शब्द बोलना।

× दूसरेको पच्चखाण करानेके वक्त ''वोसिराई शब्द बोलना।

१. मेवा, फलं। २. मुखवास। ३. छूट। ४. जराभी याद न रहेना। ५. अकस्मात्। ६. विशेष निर्जरादि खास कारणके वश, गुरुकी आज्ञा लेकर निश्चित कालके पहले प्रतिज्ञा भंग करना वह। ७. सर्व प्रकारसे समाधि न रहेना वह।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

पइवाणं, लोग–पज्जोअगराणं, अभय–दयाणं, चक्खु–दयाणं, मग्ग–दयाणं, सरण–दयाणं, जीव–दयाणं, बोहि–दयाणं, धम्म–दयाणं, धम्म–देसियाणं, धम्म–नायगाणं, धम्म–सारहीणं, धम्म-वरचाउरंत–चक्कवटीणं, दीवोताणं, सरणगईपइट्ठा, अपडिहयवर–नाणदंसणधराणं, विअट्ट–छउमाणं, जिणाणं, जावयाणं, तिन्नाणं, तारयाणं, बुद्धाणं, बोहयाणं, मुत्ताणं, मोअगाणं, सव्वन्नूणं, सव्वदरिसीणं, सिवमलयमरुयमणंत-मक्खयमव्वाबाहम-पुणरावित्ति सिद्धिगई नामधेयं, ठाणं संपत्ताणं, नमो जिणाणं, जिअभयाणं.

अर्थ :—अरिहंत भगवंतोंको मेरा नमस्कार हो, जो अरिहंत भगवान अर्थात् ज्ञानवान है, द्वादशांगी धर्मकी शुरुआत करनेवाले है, तीर्थकी स्थापना करनेवाले हैं, अन्यके उपदेश बिना, स्वयमेव बोधप्राप्त है; सर्व पुरुषोंमें उत्तम है; पुरुषोंमें सिंहसमान नीडर है। पुरुषोंमें पुंडरिक कमल समान अलिप्त है, पुरुषोंमें प्रधान गंधहस्ति समान शक्तिशाली है। लोकमें उत्तम है, लोकके नाथ है, लोकके हितकारी है, लोकमें दीपकसमान प्रकाश करनेवाले है, लोकमें अज्ञान अंधकारका नाश करनेवाले है; दुःखीओंको अभयदानके दाता है; अज्ञानसे अंध लोगोंको ज्ञानरूप नेत्रके दाता है; मार्गभ्रष्टको मार्ग बतानेवाले है, शरणागतको शरण देनेवाले है; संयमरूप जीवित के दाता है, सम्यक्त्वके प्रदान करनेवाले है, धर्महीनको धर्मदान करनेवाले है, जिज्ञासुओको धर्मका उपदेश करनेवाला है, धर्मके नायक है, धर्मके सारथि–संचालक है, धर्ममें श्रेष्ठ है तथा चक्रवर्ती समान चतुरंत है अर्थात् चारों दिशाओंके विजयी चक्रवर्ती चतुरन्त कहनेमें आते है, वैसे अरिहंत भी चार गतियोंका अंत करनेके कारण चतुरन्त कहे जाते है। भवसमुद्रमें डूब रहे जीवोंको द्वीपसमान आधार है, कर्मशत्रुसे बचावनेवाले है, सन्मार्ग...बतानेवाले होनेसे शरणरूप है, दुःखी संसारी जीवों को आश्रयदाता होनेसे आधाररूप है, संसाररूप खड्डेमें पड़ते जीवोंके आधाररूप है, सर्वपदार्थोंके स्वरूपका प्रकाश करनेवाले श्रेष्ठ

ज्ञान–दर्शन अर्थात् केवलज्ञान–केवलदर्शनके धारक है; चार घाती कर्मरूप आवरणसे मुक्त है, स्वयं राग–द्वेषके विजेता है और अन्योंको भी राग–द्वेष जीतानेवाले है, स्वयंने भवसमुद्रको पार किया है और अन्योंको भी पार पहुँचाते हैं; स्वयं ज्ञान प्राप्त हुए है और अन्योंको भी ज्ञानप्राप्त कराते है; स्वयं मुक्त है और अन्योंको भी मुक्ति प्राप्त कराते है। सर्वज्ञ है; सर्वदर्शी है; इसी कारण उपद्रवरहित, अचल, रोगरहित, अनंत, अक्षय, आकुलता–व्याकुलतारहित और पुनरागमनरहित ऐसे मोक्षस्थानको प्राप्त है।

सभी प्रकारके भयोंको जीतनेवाले जिनेश्वरोंको नमस्कार हो!

।। इति प्रथम प्रतिक्रमण ।।

❀

स्वाध्याय वह परम तप है।

बारसविहम्मि य तवे अब्भंतरबाहिरे कुसलदिट्ठे।
ण वि अत्थि ण वि य होहिदि सज्झायसमं तवो कम्मं ।। ९ ।।

[भगवती आराधना–शिक्षाधिकार]

अर्थ :—प्रवीण पुरुष श्री गणधरदेव, उनके द्वारा अवलोकन करनेमें आए हुए, जो बाह्य–अभ्यंतर बारह प्रकारके तप है, उनमें स्वाध्याय समान दूसरा तप कभी हुआ नहीं, होगा नहीं और हो नहीं रहा।

❀

दूसरा प्रतिक्रमण

संवत्सरीके दिन करनेका प्रतिक्रमण या लघु प्रतिक्रमण :—

[श्री सीमंधरप्रभुकी आज्ञा लेकर प्रतिक्रमण शुरु करना।]

❀

पाठ : १
देव-गुरु-धर्म मंगल

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

❀

पाठ : २
दिव्यध्वनि नमस्कार

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमोनमः॥

❀

पाठ : ३
ब्रह्मचर्य-महिमा

पात्र विना वस्तु न रहे, पात्रे आत्मिक ज्ञान;
पात्र थवा सेवो सदा, ब्रह्मचर्य मतिमान.

(श्रीमद् राजचंद्रमेंसे)

❀

पाठ : ४

सर्वज्ञका स्वरूप

त्रिकाल गोचर समस्त गुण–पर्यायो सहित संपूर्ण लोक और अलोकको (छह द्रव्योंको) जो प्रत्यक्ष जानते हैं वे सर्वज्ञदेव है। ३०२।

हे सर्वज्ञके अभाववादी! यदि सर्वज्ञ नहीं है तो अतीन्द्रिय पदार्थोंको कौन जान सके?

इंद्रियज्ञान तो स्थूल पदार्थ जो इन्द्रियोंके संबंधरूप वर्तमान हो, उन्हें जानता है और उनके भी समस्त पर्यायोंको नहीं जानता। ३०३।

(स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षामेंसे)

जे जाणतो अर्हंतने गुण, द्रव्य ने पर्ययपणे,
ते जीव जाणे आत्मने, तसु मोह पामे लय खरे. ८०.

अर्थ :—जो (जीव) अर्हंतको द्रव्यसे, गुणसे और पर्यायसे जानता है, वह (स्वयंके) आत्माको जानता है और उसका मोह अवश्य लय होता है। *(श्री प्रवचनसार)*

पाठ : ५

समयसारजी–स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! तें संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी.

(अनुष्टुप)

कुंदकुंद रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या.

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस–भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजली भरी भरी;
अनादिनी मूर्च्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोडे परिणति.

(शार्दूलविक्रीडित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळां व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथी साधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो.

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां, जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे.

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी.

पाठ : ६
श्री आत्मसिद्धिशास्त्रके कुछ पद

जो स्वरूप समझे बिना, पायो दुःख अनंत।
समझायो तत्पद नमूं, श्री सद्गुरु भगवंत॥१॥

वैराग्यादि सफल तब, जो सह आतमज्ञान।
अथवा आतमज्ञान की, प्राप्ति हेतु परधान॥६॥

त्याग विराग न चित्त में, होत न ताको ज्ञान।
अटके त्याग विराग में, सो भूले निज भान॥७॥

सेवे सद्गुरु चरन को, तजे स्व-आग्रह-पक्ष।
पावे सो परमार्थ को, भजे स्व-पद को लक्ष॥९॥

सद्गुरु के उपदेश बिनु, गम न परत प्रभु-रूप।
तब उपकार हि क्या बने? गमसों हो जिन-भूप॥१२॥

स्वच्छंद मत-आग्रह नशे, विलसे सद्गुरु लक्ष।
कह्यो याहि सम्यक्त्व है, कारण लखी प्रत्यक्ष॥१७॥

निजछंदनसो ना मरे, रिपु मानादि महान।
सद्गुरु चरण सुशरणसों, अल्प प्रयास प्रयाण॥१८॥

पायो स्वरूप न वृत्ति को, धायो व्रत-अभिमान।
ग्रहे नहीं परमार्थ को, प्रलुब्ध लौकिक–मान॥२८॥

अथवा निश्चय-नय ग्रहे, शब्द मात्र नहिं भाव।
लोपे सद्व्यवहार को, तजि सत्साधन नाव॥२९॥

ज्ञानदशा पायी नहीं, साधनदशा न अंक।
पावे ताका संग जो, सो डूबत भव-पंक॥३०॥

नहि कषाय उपशांतता, नहिं अंतर्वैराग्य।
सरलता न मध्यस्थता, यह मतार्थी दुर्भाग्य॥३२॥

एकहि होय त्रिकाल में, परमारथ को पंथ।
प्रेरक उस परमार्थ को, सो व्यवहार समंत॥३६॥

कषायकी उपशांतता, मात्र मोक्ष अभिलाष।
भवे-खेद प्राणी-दया, तहँ आत्मार्थ निवास॥३८॥

भासत देहाध्याससों, आत्मा देह समान।
किन्तु दोनों भिन्न है, लक्षण भिन्न प्रमाण॥४६॥

जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति का, ज्ञाता भिन्न लखात।
प्रगट रूप चैतन्यमय, सदा चिन्ह विख्यात॥५४॥

जड़-जड़ता चित्-चेतना, प्रगट भिन्न स्वस्वभाव।
कभी न पावें एकता, दोय स्वतंत्र प्रभाव॥५७॥

देहादिक संयोग सब, हैं आत्माके दृश्य।
उपजत नहि संयोगसों, आत्मा नित्य प्रत्यक्ष॥६४॥

जड़तें चिद्-उत्पत्ति अरु, चिततें जड़-उत्पाद।
कभी किसी को होत ना, ऐसो अनुभव-स्वाद॥६५॥

कोई संयोगोंसों नहीं, जाकी उत्पत्ति होय।
नाश न ताको काहुमें, तातें नित्य हि सोय॥६६॥

ज्ञाननिष्ठ जब चेतना, कर्त्ता कर्म अभाव।
भूले ज्ञायकभाव तब, कर्त्ता कर्म प्रभाव॥७८॥

कर्मभाव अज्ञान है, मोक्षभाव निज-वास।
अंधकार सम अज्ञता, नाशे ज्ञान-प्रकाश॥९८॥

जो जो कारण बन्ध के, सो हि बन्ध को पंथ।
तत् कारण छेदक-दशा, मोक्ष-पंथ भवअन्त॥९९॥

राग द्वेष अज्ञान ये, कर्म-ग्रंथि भव ग्राह।
जासों तास निवृत्ति हो, रत्नत्रयी शिव-राह॥१००॥

आत्मा सत्-चैतन्यमय, सर्वाभास विमुक्त।
जासों केवल पाइये, शिव-मग रीति सुयुक्त॥१०१॥

मत दर्शन आग्रह तजे, वर्त्ते सद्गुरु-लक्ष।
लहे शुद्ध-सम्यक्त्व सो, यामें भेद न पक्ष॥११०॥

वर्त्ते निज स्वभाव को, अनुभौ लक्ष प्रतीत।
वृत्ति बहे निज भाव में, परमार्थे समकीत॥१११॥

वर्धमान सम्यक्त्व हो, टाले मिथ्याभास।
उदय होय चारित्र को, वीतराग-पद वास॥११२॥

केवल निज स्वभाव का, अखंड वर्त्ते ज्ञान।
कहिये केवलज्ञान यह, याहि सतनु-निर्वाण॥११३॥

कोटि वर्ष का स्वप्न भी, जाग्रत होत हि नाश।
त्योंहि विभाव अनादि का, ज्ञानोदय में ग्रास॥११४॥

छूटे देहाध्यास तब, नहिं कर्त्ता तूं कर्म।
कर्म-फल-भोक्ता न तू, याहि धर्म को मर्म॥११५॥

याहि धर्मतें मोक्ष है, तूं है मोक्ष स्वरूप।
अनन्त दर्शन ज्ञान तूं, अव्याबाध स्वरूप॥११६॥

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति शिव-शर्म।
कर विचार तो पायेगा, अधि कहूँ क्या कर्म॥११७॥

मोक्ष कह्यो निज शुद्धता, रत्नत्रयी शिव-पंथ।
समझायो संक्षेपसों, सकल मार्ग-निर्ग्रंथ॥१२३॥

आत्मभ्रांति सम रोग नहि, सद्गुरु वैद्य सुजाण।
गुरु-आज्ञा सम पथ्य नहि, औषध विचार-ध्यान॥१२६॥

जो इच्छो परमार्थ तो, करो सत्य-पुरुषार्थ।
भवस्थिति आदिक आड़ ले, मत चूको आत्मार्थ॥१३०॥

जीव-शक्ति सब सिद्ध सम, व्यक्त समझसों होय।
सद्गुरु-आज्ञा जिन-दशा, निमित्त कारण दोय॥१३५॥

तनु रहते जिन की दशा, वर्ते देहातीत।
उन ज्ञानीके चरणमें, हों वंदन अगणित॥१४२॥

❀

पाठ : ७

श्री अमितगति-आचार्य-विरचित सामायिक पाठमेंसे कुछ गाथाए

(हरिगीत छंद)

+सौ प्राणी आ संसारनां, सन्मित्र मुज व्हालां थजो,
सद्गुणमां आनंद मानुं, मित्र के वेरी हजो;
दुखिया प्रति करुणा अने दुश्मन प्रति मध्यस्थता,
शुभ भावना प्रभु चार आ, पामो हृदयमां स्थिरता. १.

अति ज्ञानवंत अनंत शक्ति, दोषहीन आ आत्म छे,
अे म्यानथी तरवार पेठे, शरीरथी विभिन्न छे;
हुं शरीरथी जुदो गणुं, अे ज्ञानबळ मुजने मळो,
ने भीषण जे अज्ञान मारुं नाथ! ते सत्वर टळो. २.

सुख-दुःखमां, अरि-मित्रमां, संयोग के वियोगमां,
रखडुं वने वा राजभुवने, राचतो सुखभोगमां;
मम सर्वकाळे सर्व जीवमां, आत्मवत् बुद्धि बधी,
तुं आपजे मुज मोह कापी, आ दशा करुणानिधि. ३.

प्रमादथी प्रयाण करीने, विचरतां प्रभु अहीं तहीं,
अेकेन्द्रियादि जीवने, हणतां कदी डरतो नहीं;

+ सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेसु जीवेसु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ।। १ ।।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

छेदी विभेदी दुःख दई, में त्रास आप्यो तेमने,
करजो क्षमा मुज कर्म हिंसक, नाथ विनवुं आपने. ५.

*मन मारुं दोषित थाय तो हुं दोष अतिक्रम जाणतो,
दोषित थतुं आचारमां तो दोष व्यतिक्रम मानतो;
विषयो तणी प्रवृत्तिमां हुं अतिचारी धारतो,
विषयो तणी आसक्तिमां हुं अनाचारी समजतो. ६.

मुज वचन वाणी उच्चारमां, तलभार विनिमय थाय तो,
जो अर्थ मात्रा पद महीं, लवलेश वधघट होय तो;
यथार्थ वाणी भंगनो, दोषित प्रभु हुं आपनो,
आपी क्षमा मुजने बनावो, पात्र केवळ बोधनो. १०.

❀

*पाठ : ८

श्रावक-कर्तव्य

षट् आवश्यक कर्म

देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः ।
दानंचेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने ॥७॥

[पद्मनंदि पंचविंशतिका- उपासक- संस्कार]

अर्थ :—जिनेन्द्रदेवकी पूजा, निर्ग्रंथ गुरुओंकी सेवा, स्वाध्याय, संयम (योग्यतानुसार) तप और दान-ये छहः कर्म श्रावकोंको प्रतिदिन करने योग्य है।

---

* अर्थ :—मनकी शुद्धिमें क्षति होना, मनमें विकारभाव उत्पन्न होना वह ''अतिक्रम'' है, शीलव्रत याने व्रतमय प्रतिज्ञाका उल्लंघन करनेका भाव होना वह ''व्यतिक्रम'' है; विषयोंमें प्रवृत्ति वह ''अतिचार'' है और वे विषयोंमें अति आसक्ति वह ''अनाचार'' है।

* आलोचनादि-पद संग्रह-पृष्ठ-१०१

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

श्रावकके अष्ट-मूलगुण

मद्यमांसमधुत्यागी त्यक्तोदुम्बरपंचकः ।
नामतः श्रावकः ख्यातो नान्यथाऽपि तथा गृही ॥७२६॥

(पंचाध्यायी)

अर्थ :—मद्य, माँस और मधुका त्याग करनेवाला और पाँच +उदुम्बुर फलोंको छोडनेवाला गृहस्थ नामधारी श्रावक कहनेमें आता है, लेकिन मद्यादिकका सेवन करनेवाला गृहस्थ नामसे भी श्रावक कहलाता नहीं है।

❀

[१]पाठ : ६
मिच्छा मि दुक्कडम्

आ भव ने भवोभव महीं थयो वेरविरोध,
अंध बनी अज्ञानथी, कर्यो अतिशय क्रोध;
ते सवि मिच्छा मि दुक्कडं.

जीव खमावुं छुं सवि, क्षमा करजो सदाय,
वेरविरोध टळी जजो, अक्षयपद-सुख सोय;
समभावी आतम थशे.

भारे कर्मी जीवडा, पीओ वेरनुं झेर,
भवाटवीमां ते भमे, पामे नहि शिव-लहेर;
धर्मनो मर्म विचारजो.

❀

१ –आलोचनादि–पदसंग्रह–पृष्ठ ५७.

+ जो पेड को तोडनेसे दूध नीकलता है ऐसे बड, पीपर, उंबर, कठुंबर, पाकर वृक्षोको क्षीरवृक्ष या उदुम्बर कहते है। उनमें सूक्ष्म तथा स्थूल त्रस जीवोंकी बहुत उत्पत्ति होती है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

पाठ : १०

[परमपद प्राप्तिकी भावना कायोत्सर्गरूपसे कहनेमें आती है।]

(नमस्कार मंत्र बोलना)

अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा,
कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब,
सम्बन्धोंका बंधन तीक्षण छेद कर,
विचरूँगा कब महापुरुष के पंथ जब॥१॥

उदासीन वृत्ति हो सब परभाव से,
यह तन केवल संयम हेतु होय जब।
किसी हेतु से अन्य वस्तु चाहूँ नहीं,
तनमें किंचित् भी मूर्छा नहिं होय जब॥२॥

दर्श मोह क्षय से उपजा है बोध,
तन से भिन्न मात्र चेतन का ज्ञान जब।
चरित्र-मोह का क्षय जिससे हो जायेगा,
वर्ते ऐसा निज स्वरूप का ध्यान जब॥३॥

आत्मलीनता मन-वच-काया योग की,
मुख्यरूप से रही देह पर्यंत जब।
भयकारी उपसर्ग परिषह हो महा,
किन्तु न होवेगा स्थिरताका अन्त जब॥४॥

संयम ही के लिये योग की वृत्ति हो,
निज आश्रय से, जिन आज्ञा अनुसार जब।
वह प्रवृत्ति भी क्षण-क्षण घटती जाएगी,
होऊँ अन्त में निज स्वरूप में लीन जब॥५॥

पंच विषय में राग-द्वेष कुछ हो नहीं,
अरु प्रमाद से होय न मन को क्षोभ जब,

द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव प्रतिबंध बिन,
वीतलोभ हो विचरूँ उदयाधीन जब॥६॥

क्रोध भाव के प्रति हो क्रोध स्वभावता,
मान भाव प्रति दीनभावमय मान जब।
माया के प्रति माया साक्षी भाव की,
लोभ भाव प्रति हो निर्लोभ समान जब॥७॥

बहु उपसर्ग कर्ता के प्रति भी क्रोध नहिं,
वन्दे चक्री तो भी मान न होय जब।
देह जाय पर माया नहिं हो रोम में
लोभ नहि हो प्रबल सिद्धि निदान जब॥८॥

नग्नभाव मुंडभाव सहित अस्नानता,
अदन्तधोवन आदि परम प्रसिद्ध जब।
केश-रोम-नख आदि अंग श्रृंगार नहिं,
द्रव्य-भाव संयममय निर्ग्रंथ-सिद्ध जब॥९॥

शत्रु-मित्र के प्रति वर्ते समदर्शिता,
मान-अमान में वर्ते वही स्वभाव जब।
जन्म-मरण में हो नहिं न्यून-अधिकता,
भव-मुक्ति में भी वर्ते समभाव जब॥१०॥

एकाकी विचरूँगा जब श्मशान में,
गिरि पर होगा बाघ सिंह संयोग जब।
अडोल आसन और न मनमें क्षोभ हो,
जानूँ पाया परम मित्र संयोग जब॥११॥

घोर तपश्चर्या में, तन संताप नहिं,
सरस अशन में भी हो नहीं प्रसन्न मन।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की।
सब में भासे पुद्गल एक स्वभाव जब॥१२॥

(नमस्कार मंत्र बोलके कायोत्सर्ग पूर्ण करे।)

❀

पाठ : ११ प्रत्याख्यान

[एक साथ दो प्रतिक्रमण करे या केवल यह प्रतिक्रमण करे तब, प्रथम प्रतिक्रमण के पाठ 16 के मुताबीत यहाँ प्रत्याख्यान करना।]

❀

पाठ : १२

जिनजीनी वाणी

सीमंधर मुखथी फूलडां खरे,
अेनी कुंदकुंद गूंथे माळ रे,
जिनजीनी वाणी भली रे...सीमंधर०

वाणी भली मन लागे रळी,
जेमां सार–समय शिरताज रे,
जिनजीनी वाणी भली रे...सीमंधर०

गूंथ्यां पाहुड ने गूंथ्युं पंचास्ति,
गूंथ्युं प्रवचनसार रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.

गूंथ्युं नियमसार, गूंथ्युं रयणसार,
गूंथ्यो समयनो सार रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.....सीमंधर०

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

स्याद्वाद केरी सुवासे भरेलो,
जिनजीनो ॐकारनाद रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.

वंदुं जिनेश्वर, वंदुं हुं कुंदकुंद,
वंदुं अे ॐकारनाद रे,
जिनजीनी वाणी भली रे....सीमंधर०

हैडे हजो, मारा भावे हजो,
मारा ध्याने हजो जिनवाण रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.

जिनेश्वरदेवनी वाणीना वायरा,
वाजो मने दिनरात रे,
जिनजीनी वाणी भली रे....सीमंधर०

❀

पाठ : १३

अंतिम-मंगल

तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्वाणभाजनम्॥ २३॥

[पद्मनंदिपंचविंशतिका-एकत्व सप्तति]

अर्थ :—जो जीवने प्रसन्नचित्तसे यह चैतन्यस्वरूप आत्माकी बात भी सुनी है, वह भव्य पुरुष भविष्यमें होनेवाली मुक्तिका अवश्य भाजन होगा।

सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं।
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम्॥

''इति द्वितिय प्रतिक्रमण पूर्ण।''

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे॥

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव॥

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते॥

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्॥

❀

(स्वाध्याय के लिये)

उपादान-निमित्तके दोहे

प्रश्न :—

गुरु-उपदेश निमित्त बिन, उपादान बलहीन;
ज्यों नर दूजे पांव बिन, चलवेको आधीन. १.

हौं जानै था अेक ही, उपादानसों काज;
थकै सहाई पौन बिन, पानी मांहि जहाज. २.

अर्थ :—गुरुके उपदेशके निमित्त बिना उपादान (आत्मा स्वयं) बल हीन है; जैसे मनुष्य चलनेके लिये, दूसरे पाँव बिना असमर्थ है।

जो ऐसा ही जानता है कि—एक उपादान से ही कार्य होता है (वह बराबर नहीं.) जैसे जलमें जहाज पवनकी मददके बिना थकता है वैसे।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

उत्तर :—

ज्ञान नैन किरिया चरण, दोऊ शिवमग धार;
उपादान निहचै जहाँ, तहाँ निमित्त व्यवहार. ३.

अर्थ :—सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान और उस ज्ञानमें चरणरूप (स्थिरतारूप) क्रिया, वे दोनों शिवमार्ग (मोक्षमार्ग) को धारण करते है. जहाँ उपादान वास्तव (निश्चय) हो, वहाँ निमित्त होता ही है, यह व्यवहार है। (परवस्तु–निमित्त हाजररूप होता है ऐसा परका ज्ञान करना, उसको व्यवहार कहनेमें आता है।)

उपादान निज गुण जहां, तहं निमित्त पर होय;
भेदज्ञान परमाण विधि, विरला बूझै कोय. ४.

अर्थ :—जहाँ अपना गुण उपादानरूपसे तैयार हो, वहाँ उसे अनुकुल पर निमित्त होता है, ऐसा भेदज्ञानके प्रविणपुरुष जानते है और वैसा कोई विरल ही बुझता है। (मुक्त होते है)

उपादान बल जहँ तहाँ, नहिं निमित्तको दाव;
अेक चक्रसों रथ चलै, रविको यहै स्वभाव. ५.

अर्थ :—जहाँ देखो वहाँ उपादानका बल है, निमित्तका दाव नहीं है, अर्थात् निमित्त कुछ भी कर सकता नहीं; जैसे सूर्यका ऐसा स्वभाव है कि एक चक्रसे रथ चलता है, वैसे।

सधै वस्तु असहाय जहँ, तहँ निमित्त है कौन;
ज्यों जहाज परवाहमें, तिरै सहज बिन पौन. ६.

नोंध :—(१) उपादान = वस्तु की सहज शक्ति। (२) निमित्त = संयोगी कारण। (३) दृष्टांत में एक चक्र सूर्यका कहा, वैसे ही वर्तमानमें युरोप इ. देशोमें पहाडीमें चलती रेल्वे एक ही चक्रसे चलती है। (४) उपादान स्वयं स्वयंसे, स्वयंमें कार्य करता है। निमित्तकी मौजुदगी होती है, पर वह उपादानको कुछ मदद या प्रभाव नहीं कर सकता–ऐसा बताया है।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अर्थ :—वस्तु (आत्मा) पर सहाय के बिना ही साध्य हो सकता है, उसमें निमित्त कैसा? (निमित्त परमें कुछ करता नहीं।) जैसे जल–प्रवाहमें जहाज पवन के बिना सहज तैरता है, वैसे।

उपादानविधि निरवचन, है निमित्त-उपदेश;
बसै जु जैसे देशमें, धरै सु तैसे भेष. ७.

अर्थ :—उपादानकी रीत निर्वचनीय है। निमित्तसे उपदेश देनेकी रीत है। जैसे जीव जो देशमें रहता है, वह देशका भेष पहनेगा।

❀

भैया भगवतीदासजी कृत

उपादान-निमित्तका संवाद

(दोहरा)

पाद प्रणमि जिनदेवके, अेक उक्ति उपजाय;
उपादान अरु निमित्तको, कहुं संवाद बनाय. १.

अर्थ :—जिनदेवके चरणोंको प्रणाम करके, एक अपूर्व कथन तैयार करता हूँ। उपादान और निमित्तका संवाद बनाकर यह कह रहा हूँ।...1

प्रश्न :—

पूछत है कोऊ तहां, उपादान किह नाम;
कहो निमित्त कहिये कहा, कबके हैं इह ठाम. २.

अर्थ :—यदि कोई प्रश्न करे कि–उपादान किसका नाम? निमित्त किसको कहे? और कबसे उनका संबंध (मिलाप) है, यह कहो।...2

उत्तर :—

उपादान निजशक्ति है, जियको मूल स्वभाव;
है निमित्त परयोगतें, बन्यो अनादि बनाव. ३.

अर्थ :—उपादान स्वयंकी शक्ति है, यह जीवका मूल स्वभाव है;

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

और परसंयोग 'निमित्त' है. उन (दोनों) का संबंध अनादिसे बन रहा है।...3

निमित्त :—

निमित्त कहै मोकों सबै, जानत हैं जगलोक;
तेरो नाँव न जानहीं, उपादान को होय. ४.

अर्थ :—निमित्त कहता है, जगतके सभी लोग मुझे जानते है; उपादान क्या है? उसका नाम भी जानते नहीं।...4

उपादान :—

उपादान कहै रे निमित्त, तू कहा करे गुमान;
मोकों जानें जीव वे, जो हैं सम्यक्वान. ५.

अर्थ :—उपादान कहता है :—अरे निमित्त! तूं अभिमान क्युं कर रहा है? जो जीव सम्यग्ज्ञानी (आत्माके) सच्चे ज्ञानी है, वे मुझे जानते है।...5

निमित्त :—

कहें जीव सब जगतके, जो निमित्त सोई होय;
उपादानकी बातको, पूछे नांहि कोय. ६.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—जगतके सभी जीव कहते है कि यदि निमित्त हो तो (कार्य) होगा, उपादानकी बात कोई कुछ पूछते नहीं।...6

उपादान :—

उपादान बिन निमित्त तू, कर न सकै इक काज;
कहा भयो जग ना लखै, जानत हैं जिनराज. ७.

अर्थ :—उपादान कहता है :—अरे निमित्त! एक भी कार्य उपादानके बिना हो नहीं सकता। जगत न जाने, उससे क्या हुआ? जिनराज यह जानते है।...7

निमित्त :—

देव जिनेश्वर, गुरु यती, अरु जिन-आगम सार;
इहि निमित्ततें जीव सब, पावत हैं भवपार. ८.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—जिनेश्वर देव, निर्ग्रंथगुरु और वीतरागके आगम उत्कृष्ट है; वे निमित्तोंके द्वारा सब जीव भवका पार पाते है।...8

उपादान :—

यह निमित्त इस जीवको, मिल्यो अनंती बार;
उपादान पलट्यो नहीं, तौ भटक्यौ संसार. ९.

अर्थ :—उपादान कहता है :—वे निमित्त तो यह जीवको अनंत बार मिले, पर उपादान (जीवस्वयं) पलटा नहीं, इसलिये वह संसारमें भटक रहा है।...9

निमित्त :—

कै केवलि कै साधुके, निकट भव्य जो होय;
सो क्षायक सम्यक् लहै, यह निमित्तबल जोय. १०.

अर्थ :—निमित्त कहता है : यदि केवली भगवान वा श्रुतकेवली मुनिके पास भव्य जीव होगा तो क्षायिक सम्यक्त्व प्रगटता है। देखो, यह निमित्तका बल!...10

उपादान :—

केवलि अरु मुनिराजके, पास रहैं बहु लोय;
पै जाको सुलट्यो धनी, क्षायक ताको होय. ११.

अर्थ :—उपादान कहता है :—केवली और श्रुतकेवली मुनिराजके पास बहुत लोग रहते है, लेकिन जिसका धनी (आत्मा) सूलटता है, उसको ही क्षायिक (सम्यक्त्व) होता है।...11

निमित्त :—

हिंसादिक पापन किये, जीव नर्कमें जाहिं;
जो निमित्त नहिं कामको, तो इम काहे कहाहिं. १२.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—जो हिंसादिक पाप करते है वह नर्कमें जाते हैं, जो निमित्त कामका नहीं है फिर ऐसा क्यों कहा ?...12

उपादान :—

हिंसामें उपयोग जिहं, रहै ब्रह्मके राच;
तेई नर्कमें जात हैं, मुनि नहिं जाहिं कदाच. १३.

अर्थ :—हिंसामें जिसका उपयोग (चैतन्यका परिणाम) होगा, और जो आत्मा उसमें राचता हैं, वह ही नर्कमें जाता है, (भाव) मुनि कभी नर्कमें नहीं जाते।...13

निमित्त :—

या दान पूजा किये, जीव सुखी जग होय;
जो निमित्त झूठो कहो, यह क्यों मानै लोय. १४.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—दया, दान, पूजा करनेसे जीव जगतमें सुखी होता है, तुम कहते हो, वैसे निमित्त झूठा है फिर लोक ऐसा क्यों मानते है ?...14

उपादान :—

दया दान पूजा भली, जगत मांहिं सुखकार;
जहँ अनुभवको आचरन, तहं यह बंध विचार. १५.

अर्थ :—उपादान कहता है :—दया, दान, पूजा इत्यादि शुभभाव जगतमें बाह्य सवलत दिलावे, पर अनुभवके आचरणका विचार करते, वे सभी बंध है, (धर्म नहीं)।...15

निमित्त :—

यह तो बात प्रसिद्ध है, सोच देख उरमाहिं;
नरदेहीके निमित्त बिन, जिय क्यों मुक्ति न जाहिं. १६.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—यह बात तो प्रसिद्ध है कि नरदेहके निमित्त बिना जीव मुक्तिको प्राप्त कर नहीं सकता; इसलिये हे उपादान! तुं यह अंतरमें विचार कर।...16

उपादान :—

देह पींजरा जीवको, रोकै शिवपुर जात;
उपादानकी शक्तिसों, मुक्ति होत रे भ्रात! १७.

अर्थ :—उपादान निमित्तको कहता है :—अरे भाई! देहका पिंजर तो जीवको मोक्षमें जानेसे रोकता है, लेकिन उपादानकी शक्तिसे मोक्ष होता है।...17

[नोंध :—देहका पिंजर जीवको मोक्ष जानेसे रोकता है, यह जो कहनेमें आया, वह व्यवहार कथन है। जीव शरीरमें अपनापन की गाँठ बांधके, विभावमें रुक जाता है, तब शरीर, जीवको रोकता है, ऐसा उपचार से कहा जाता है।]

निमित्त :—

उपादान सब जीवपै, रोकनहारो कौन;
जाते क्यों नहिं मुक्तिमें, बिन निमित्तके हौन. १८.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—उपादान तो सब जीवोंको है, तो फिर उनको रोकता कौन है? मुक्तिमें क्यों नहीं जाते? निमित्त नहीं मिलनेसे ऐसा होता है।...18

उपादान :—

उपादान सु अनादिको, उलट रह्यौ जगमाहिं;
सुलटत ही सूधे चले, सिद्धलोकको जाहिं. १९.

अर्थ :—उपादान कहता है :—जगतमें उपादान अनादि से उल्टा प्रवर्तता है, सूलटनेके बाद, सही चाल चलता है, अर्थात् सच्चा ज्ञान और चारित्र होता है और इसलिये वह सिद्धलोकमें (मोक्षमें) जाता है।...19

निमित्त :—

कहुं अनादि बिन निमित्त ही, उलट रह्यो उपयोग;
ऐसी बात न संभवै, उपादान तुम जोग. २०.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—अनादिसे निमित्त बिना ही उपयोग (ज्ञानका व्यापार) क्या उलटा हो रहा है? हे उपादान! ऐसी तेरी बात यथार्थ संभवती नहीं है।...20

उपादान :—

उपादान कहे रे निमित्त, हमपै कही न जाय;
अैसे ही जिन केवली, देखै त्रिभुवनराय. २१.

अर्थ :—उपादान कहता है :—अरे निमित्त! मेरे से तो नहीं कहा जाता। जिनकेवली त्रिभुवनराय ऐसा ही देख रहे है।

[नोंध :—यहाँ यह तात्पर्य है कि : जब उपादानमें कार्य होता है, तब निमित्त स्वयं मौजुद होता है, लेकिन वह उपादानका कुछ भी कर सकता नहीं—ऐसा अनंतज्ञानी उनके ज्ञानमें देखते है।...21]

निमित्त :—

जो देख्यो भगवानने, सो ही सांचो आहि;
हम तुम संग अनादिके, बली कहोगे काहि. २२.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—भगवानने जो देखा, वही सच्चा है, यह तो बराबर है किन्तु तेरा और मेरा संबंध अनादिका है, इसलिये हममेंसे बलवान किसको समजे? (दोनो सरीखे है, ऐसा तो कहो)...22

उपादान :—

उपादान कहे वह बली, जाको नाश न होय;
जो उपजत विनशत रहै, बली कहांतें सोय. २३.

अर्थ :—उपादान कहता है, जिसका नाश नहीं होता वह बलवान; जो उपजता है और नष्ट होता है, वह बलवान कैसे हो सकता है? (नहीं हो सकता)...23

नोंध :—उपादान त्रिकाली अखंड एकरूप वस्तु स्वयं है, इसलिए उसका नाश नहीं है। निमित्त तो संयोगरूप है, आता है, जाता है, सो नाशवंत है, इसलिये उपादान ही बलवान है।...23

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

निमित्त :—

उपादान तुम जोर हो, तो क्यों लेत अहार;
परनिमित्तके योगसों, जीवत सब संसार. २४.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—हे उपादान! तेरा जोर है तो तुं आहार क्यों लेता है? संसारके सभी जीव पर निमित्तके योगसे जी रहे हैं।...24

उपादान :—

जो अहारके जोगसों, जीवत है जगमाहिं;
तो वासी संसारके, मरते कोऊ नाहिं. २५.

अर्थ :—उपादान कहता है :—यदि आहारके जोरसे जगतके जीव जी रहे हैं, तो संसारवासी कोई जीव मरते ही नहीं।...25

निमित्त :—

सूर सोम मणि अग्निके, निमित लखैं ये नैन;
अंधकारमें कित गयो, उपादान दृग दैन. २६.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—सूर्य, चंद्र, मणि या अग्निका निमित्त होगा तो आँख देख सकती है; उपादान सब देखनेका (कार्य) करते है, तो अंधकारमें वह किधर गया? (अंधकारमें क्यों आँखसे देख नहीं सकता?) .26

उपादान :—

सूर सोम मणि अग्नि जो, करैं अनेक प्रकाश;
नैनशक्ति बिन ना लखै, अंधकार सम भास. २७.

अर्थ :—उपादान कहता है :—चूँकि सूर्य, चंद्र, मणि और अग्नि अनेक प्रकारका प्रकाश करते है, फिर भी देखनेकी शक्ति के बिना देख नहीं सकते; सब अंधकारमय भासता है। ...27

निमित्त :—

कहै निमित्त वे जीव को मो बिन जगके मांहि?
सबै हमारे वश परे, हम बिन मुक्ति न जाहिं. २८.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अर्थ :—निमित्त कहता है :—मेरे बिना जगतमें जीवको कौन गिने? सब मेरे आधीन है, मेरे बिना मुक्ति नहीं होती?...28

उपादान :—

उपादान कहे रे निमित्त! अैसे बोल न बोल;
तोको तज निज भजत हैं, तेही करैं किलोल. २९.

अर्थ :—उपादान कहता है :–अरे निमित्त! ऐसे वचन न बोल! तेरी दृष्टि छोड़कर, जो जीव अपना भजन करता है, वह ही कल्लोल (आनंद) करता है।...29

निमित्त :—

कहै निमित्त हमको तजे, ते कैसे शिव जात?
पंचमहाव्रत प्रगट हैं, और हु क्रिया विख्यात. ३०.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—हमको तजकर मोक्ष कैसे जायेंगे? पाँच महाव्रत प्रगट है; और दूसरी क्रिया भी प्रसिद्ध है। (उन्हें लोग मोक्षका कारण मानते है।)...30

उपादान :—

पंचमहाव्रत जोगत्रय, और सकल व्यवहार;
परको निमित्त खपायके, तब पहुंचे भवपार. ३१.

अर्थ :—उपादान कहता है :—पाँच महाव्रत, मन, वचन और काया, वे तीनकी ओर जुडना; यह सब व्यवहार और पर–निमित्तका लक्ष जब जीव छोड़ता है तभी भवके पार पहोंचता है।...31

निमित्त :—

कहै निमित्त जग मैं बडो, मोतैं बडो न कोय;
तीन लोकके नाथ सब, मो प्रसादतैं होय. ३२.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—जगतमें मैं बड़ा हूँ, मेरेसे बड़ा कोई नहीं है; सब तीन लोकके नाथ (तीर्थंकरो) भी मेरी कृपासे होते है।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

नोंध :—सम्यग्दर्शनकी भूमिकामें ज्ञानीको शुभ विकल्प आनेसे, तीर्थंकर नामकर्म बंधता है, वह दृष्टांत बताकर, स्वयम्का बलवानपना 'निमित्त' आगे धरता है।...32

उपादान :—

उपादान कहै तू कहा, चहुंगतिमें ले जाय;
तो प्रसादतैं जीव सब, दुःखी होहिं रे भाय. ३३.

अर्थ :—उपादान कहता है :—तुं कौन है? तुं तो जीव को चारगतिमें ले जाता है। भाई! तेरी कृपासे सब जीव दुःखी ही होते है।

नोंध :—निमित्ताधीन दृष्टिका फल चार गति याने संसार है। निमित्त मजबूरीसे जीवको चार गतिमें ले जाता है, ऐसा समझना नहीं।...33

निमित्त :—

कहै निमित्त जो दुःख सहै, सो तुम हमहि लगाय;
सुखी कौनतैं होत है, ताको देहु बताय. ३४.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—जीव दुःख सहन करता है, वह दोषारोपण, तुम हमारे पे करते हो, तो फिर यह बतावो कि जीव सुखी कैसे होता है?...34

उपादान :—

जो सुखको तू सुख कहै, सो सुख तो सुख नाहिं;
ये सुख, दुखके मूल हैं, सुख अविनाशी माहिं. ३५.

अर्थ :—उपादान कहता है :—जिस सुखको तु सुख कहता है वह सुख ही नहीं, वह सुख तो दुःखका मूल है; आत्मा के अंतरमें अविनाशी सुख है।...35

निमित्त :—

अविनाशी घट घट बसै, सुख क्यों विलसत नाहिं?
शुभनिमित्तके योग बिन, परे परे विललाहिं. ३६.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

अर्थ :—निमित्त कहता है :—अविनाशी (सुख) तो घट-घट (हरजीव) में बसा हुआ है, तो जीवोको सुखका विलास (भोगवटो) क्यों नहीं? शुभ निमित्तके योग बिना जीव पल पल दुःखी हो रहा है।...36

उपादान :—

शुभनिमित्त इह जीवको, मिल्यो कई भवसार;
पै इक सम्यक् दर्श बिन, भटकत फिर्यो गंवार. ३७.

अर्थ :—उपादान कहता है :—शुभ निमित्त यह जीव को बहोत भवोंमें मिला, फिर भी एक सम्यग्दर्शनके बिना, यह जीव गँवारकी तरह (अज्ञानभावसे) भटक रहा है।...37

निमित्त :—

सम्यक्दर्श भये कहा त्वरित मुक्तिमें जाहिं;
आगे ध्यान निमित्त है, ते शिवको पहुंचाहिं. ३८.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—सम्यग्दर्शन होनेसे, क्या हुआ? उससे क्या तुरंत मोक्षमें जा पाते है? आगे भी ध्यान निमित्त है; वह शिव (मोक्ष) पदमें पहोंचाता है।...38

उपादान :—

छोर ध्यानकी धारना, मोर योगकी रीति;
तोर कर्मके जालको, जोर लई शिवप्रीति. ३९.

अर्थ :—उपादान कहता है :—ध्यानकी धारणा छोड़कर, योगकी रीतको पूर्ण करके, कर्मजालको तोडकर, पुरुषार्थसे शिवपदकी प्राप्ति जीव करता है।...39

निमित्तका पराजय :—

तब निमित्त हार्यो तहां, अब नहिं जोर बसाय;
उपादान शिवलोकमें, पहुंच्यो कर्म खपाय. ४०.

अर्थ :—तब निमित्त वहाँ हार गया; अब वह कुछ जोर

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

नहीं कर पाता। उपादान कर्मका क्षय करके शिवलोकमें (सिद्धपदमें) पहोंच गया।...40

उपादानकी जीत :—

उपादान जीत्यो तहां, निजबल कर परकास;
सुख अनंत ध्रुव भोगवे, अंत न बरन्यो तास. ४१.

अर्थ :—ऐसे अपने बलसे उपादान जीता। (वह उपादान अब) अनंत ध्रुव सुखका अनुभव कर रहा है, जिसका कभी अंत आएगा नहीं।...41

तत्त्वस्वरूप :—

उपादान अरु निमित्त ये, सब जीवनपै वीर;
जो निजशक्ति संभारहीं, सो पहुंचे भवतीर. ४२.

अर्थ :—उपादान और निमित्त, वे सभी जीवोंका होता है, पर जो वीर है वह निजशक्तिको संभालता है और वह भवको पार उतरता है।...42

आत्माकी महिमा :—

भैया महिमा ब्रह्मकी, कैसे वरनी जाय;
वचन-अगोचर वस्तु है, कहिवो वचन बनाय. ४३.

अर्थ :—भैया (भगवतीदास) कहते है :—ब्रह्मका (आत्माका) महिमाका कैसे वर्णन करे? वह तो वचनसे अगोचर है–किस बचनोंसे बताया जाय?...43

सरस संवाद :—

उपादान अरु निमित्तको, सरस बन्यो संवाद;
समदृष्टिको सुगम है, मूरखको बकवाद. ४४.

अर्थ :—उपादान और निमित्तका यह सुंदर संवाद बना है; सम्यग्दृष्टि को सरल है, मूरखको बकवास लगेगा।...44

आत्माके गुणोंको पहिचाने वह इस स्वरूपको जाने :—

जो जानै गुण ब्रह्मके, सो जानै यह भेद;
साख जिनागमसों मिलै, तो मत कीज्यो खेद. ४५.

अर्थ :—आत्माके गुणोंको जो जाने, वह इसका मर्म पहिचाने; साक्षी जिनागमसे मिलती है। सो खेद (संदेह) न करना।...45

आग्रामें संवाद बनाया :—

नगर आगरो अग्र है, जैनी जनको वास;
तिहं थानक रचना करी, 'भैया' स्वमतिप्रकास. ४६.

अर्थ :—आगरा शहेर जैनी जनोके वास के लिये अग्र है; उस क्षेत्र यह रचना (भगवतीदास) भैयाने अपने ज्ञान अनुसार की है वा अपने ज्ञानके प्रकाशके लिये की है।...46

रचनाकाल :—

संवत विक्रम भूपको, सत्रहसै पंचास;
फाल्गुन पहिले पक्षमें, दशों दिशा परकाश. ४७.

अर्थ :—विक्रम राजाके संवत 1750 के फाल्गुनके प्रथम पक्षमें दशे दिशाओंमें इसका उद्योत हुआ।...47

इति उपादान-निमित्त संवाद

श्री सद्गुरुदेव-उपकार दर्शन

अहो! अहो! श्री सद्गुरु, करुणासिंधु अपार;
आ पामर पर प्रभु कर्यो, अहो! अहो! उपकार.
शुं प्रभु चरण कने धरुं, आत्माथी सौ हीन;
ते तो प्रभुअे आपियो, वर्तुं चरणाधीन.
आ देहादि आजथी, वर्तो प्रभु आधीन;
दास दास हुं दास छुं, आप प्रभुनो दीन.
षट् स्थानक समजावीने, भिन्न बताव्यो आप;
म्यानथकी तरवारवत्, अे उपकार अमाप.
जे स्वरूप समज्या विना पाम्यो दुःख अनंत;
समजाव्युं ते पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवंत.
परम पुरुष प्रभु सद्गुरु, परमज्ञान सुखधाम;
जेणे आप्युं भान निज, तेने सदा प्रणाम.
देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत;
ते ज्ञानीना चरणमां, हो वंदन अगणित.

❀

प्रणिपात-स्तुति

हे परमकृपालु देव! जन्म, जरा, मरणादि सर्व दुःखोंका अत्यंत क्षय करनेवाला वीतराग पुरुषका मूलमार्ग आप श्रीमानने अनंतकृपा करके मुझे दिया, उस अनंत उपकारका प्रत्युपकार करनेमें, मैं सर्वथा असमर्थ हूँ; फिर आप श्रीमान कुछ भी लेनेमें सर्वथा निःस्पृह हैं; इसलिये मैं मन, वचन और कायाकी एकाग्रतासे आपके चरणारविंदमें नमस्कार करता हूँ; आपकी परमभक्ति और वीतरागपुरुषके मूलधर्मकी उपासना, मेरे हृदयमें भवपर्यंत अखंड जाग्रत रहें, इतना माँगता हूँ, वह सफल हो।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

गुरुदेवके प्रति क्षमापना-स्तुति

[उत्तम क्षमावणी-पर्व :]

गुरुदेव! तारां चरणमां फरी फरी करुं हुं वंदना,
स्थापी अनंतानंत तुज उपकार मारा हृदयमां. १.

करीने कृपादृष्टि, प्रभु! नित राखजो तुम चरणमां,
रे! धन्य छे अे जीवन जे वीते शीतळ तुज छांयमां. २.

गुरुदेव! अविनय कंई थयो, अपराध कंई पण जे थया,
करजो क्षमा अम बाळने, अे दीनभावे याचना. ३.

मन-वचन-काय थकी थया जाण्ये-अजाण्ये दोष जे,
करजो क्षमा सौ दोषनी, हे नाथ! विनवुं आपने. ४.

तारी चरणसेवा थकी सौ दोष सहेजे जाय छे,
क्रोधादि भाव दूरे थई भावो क्षमादिक थाय छे. ५.

गुरुवर! नमुं हुं आपने, अम जीवनना आधारने,
वैराग्यपूरित ज्ञान-अमृत सींचनारा मेघने. ६.

मिथ्यात्वभावे मूढ थई निजतत्त्व नहि जाण्युं अरे!
आपी क्षमा अे दोषनी आ परिभ्रमण टाळो हवे. ७.

सम्यक्त्व-आदिक धर्म पामुं, तुंज चरण-आश्रय वडे;
जय जय थजो प्रभु! आपनो, सौ भक्त शासनना चहे. ८.

❀

तात्त्विक-सुवाक्य

- दंसणमूलो धम्मो। धर्मका मूल दर्शन है।
- समयसार जिनराज है, स्याद्वाद जिन-वैन।
- मैं सच्चिदानंद परमात्मा हूँ।
- स्वरूपस्थित सद्गुरुदेवका प्रभावना-उदय जगतका कल्याण करो, जयवंत वर्तो।
- आत्मा अपनेपनेसे है और परपनेसे नहीं है, ऐसी जो (अपनेसे अस्तिरूप) (परसे नास्तिरूप) दृष्टि वह ही वास्तवमें अनेकान्त दृष्टि है।
- वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो;
  अब क्यों न बिचारत है मनसे कछु और रहा उन साधनसें।
- दुर्लभ मनुष्यपना पाकर जो विषयोंमें रमता है, वह भस्मके लिये रत्नको जलाता है।
- महापुरुषके आचरण देखनेके अलावा, उनके अंतःकरणको देखना, वही सत्य परीक्षा है।
- कोई भी तुच्छ विषयमें प्रवेश होने पर भी उज्ज्वल आत्माओंका स्वतः वेग वैराग्यमें ही बना रहता है।
- ज्ञानसे ही राग-द्वेष नष्ट होता है। ज्ञानका मुख्य साधन विचार है।
- विचारदशाका मुख्य साधन सत्पुरुषके वचनका यथार्थ ग्रहण है।
- समझके बिना, आगम अनर्थकारी हो जावे। संत बिना अंत की बातका पता नहीं लगता।
- अंतरका सुख अंतरंगकी स्थितिमें है, स्थिति होनेके लिये बाह्य पदार्थोंका आश्चर्य भूल जा। समश्रेणी टिकना दुर्लभ है, निमित्ताधीन वृत्ति बारबार हो जाती है। न होवे उसके लिये अचल, गंभीर उपयोग को धारण कर।
- शुद्ध उपयोग वह धर्म; भावसे भवका अभाव।
- क्रिया वह कर्म, उपयोग वह धर्म, परिणाम वह बंध, भूल वह मिथ्यात्व, शोकको भूल जाना—ये उत्तम वस्तु ज्ञानीओंने मुझे दी।

- तुझ पादसे स्पर्शाई ऐसी धूलिको भी धन्य है।
- जिसको पुन्यकी रुचि है, उसको जडकी रुचि है, उसे आत्माके धर्मकी रुचि नहीं।
- अहो! श्री सत्पुरुष! अहो! आपके वचनामृत; मुद्रा और सत्समागम! बारबार अहो! अहो!!
- जैनम् जयति शासनम् अनादिनिधनम्।
- चैतन्य पदार्थकी क्रिया चैतन्यमें होती है, जडमें नहीं।
- निरंजन ज्ञानमयी परमात्मद्रव्य उपादेय है।
- शिवमय, अनुपम–ज्ञानमय शुद्धात्मस्वरूप उपादेय है।
- शुद्धात्मद्रव्यकी प्राप्तिके उपादानरूप निर्विकल्प समाधि उपादेय है।
- केवलज्ञानादि गुणरूप जो शुद्धात्मस्वरूप है, वह आराधने योग्य है।
- चिदानंद चिद्रूप एक अखंडस्वभाव शुद्धात्मतत्त्व ही सत्य है।

सर्व सामान्य प्रतिक्रमण-आवश्यक (हिन्दी)

प्रस्तुत आवृत्तिके प्रकाशनार्थ प्राप्त दानराशी

रु. १०००=०० श्री भूधरमलजी उत्तमचंदजी जैन, मुंबई
रु. १०००=०० श्री भूरीबेन भूधरमलजी जैन
रु. १०००=०० श्री उत्तमचंदजी जैन
रु. १०००=०० श्री विद्याबेन उत्तमचंदजी जैन
रु. १०००=०० श्री त्रिशला उत्तमचंदजी जैन
रु. १०००=०० श्री आराधना उत्तमचंदजी जैन
रु. १०००=०० श्री चंदनबाला कमलेशचंदजी जैन
रु. १०००=०० श्री प्रकाशदेवी मफतलाल जैन
रु. १०००=०० श्री शीला सुरेशचंद जैन
रु. १०००=०० श्री सुंदरबाई उत्तमचंदजी जैन

અનુભૂતિ તીર્થ મહાન, સ્વર્ણપુરી સોહે
યહ કહાનગુરુ વરદાન, મંગલ મુક્તિ મિલે.